संस्थापक :

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

:1

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

हे अर्जुन ! मेरे अनन्यशरण होकर स्त्री, वैश्य और शूद्रगण तथा चाण्डालादि पापयोनिवाले भी निश्चय परमगति को प्राप्त हो हैं। फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण तथा राजर्षि (मेरे शरणागत) भक्तों की तो बात ही क्या है। अतएव तुम इस सुखरहित और अनित्य मनुष्यजन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

तुम मुझमें मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार मेरे शरण होकर आत्मा को मुझमें समाहित करके तुम मुझको ही प्राप्त होओगे।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।

सब गोपनीयों में भी परम गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन तुम फिर सुनो। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए तुम्हारे हित की बात बताता हूं।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

हे अर्जुन! तुम केवल मुझमें ही मन रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। ऐसा करने पर तुम मुझको ही प्राप्त होओगे। यह मैं तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे (बहुत ही) प्यारे हो। सब धर्मों (दूसरे सब तरह के आश्रयों) को त्यागकर एकमात्र मेरी ही अनन्य-शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से सर्वथा छुड़ा दूँगा। तुम चिन्ता न करो।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 1

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

–श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/12

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

अप्रैल 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	[illegible] योग–3 – डा. [illegible] शर्मा	10
4.	योगी की समाधिगत अवस्था – डा. [illegible] मिश्रा	13
5.	[illegible] – डा. [illegible] कुमार [illegible]	15
6.	योग की गंगा बही गंगापुर में	18
7.	योग प्रकाश के दाता महाप्रभु रामलालजी – [illegible]	21
8.	[illegible] का आनन्द [illegible] – कृष्ण कुमार पाण्डेय	23
9.	सिद्धयोग पत्रिका हमारी – [illegible] कुमार सिंह	25
10.	एक तू ही तो है जिसका है आसरा – [illegible] सिंह	27
11.	श्री दीक्षित जी की योग दीक्षा – [illegible] उपाध्याय	28
12.	श्री गुरुतत्व – डा. विजय सिंह	34
13.	'[illegible]' के भीतर 'ईश्वर' के सिवाय कुछ नहीं है – [illegible] सिंह [illegible]	38
14.	यौगिक प्रश्नोत्तरी – आचार्य [illegible]	40
15.	योग साधना से विश्व शांति – डा. जे. पी. शर्मा	46
16.	श्री प्रभु चरणों में समर्पित – [illegible] कुमार	52
17.	गुरुदेव की करुणा कृपा – [illegible]	53
18.	मोरि सुधारी सो सब भाँती – डा. [illegible] चतुर्वेदी	55
19.	भजन – [illegible]	57
20.	गीता का कर्मयोग – श्री [illegible] कुमार [illegible]	58

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षों केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्या योग

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' आध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया गया है।

भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' कह करके अपने पतंजलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बतलाई है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है – चित्त की समस्त वृत्तियों का निरंतर रोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई चित्तवृत्तियों का बिल्कुल ही रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण – ये तीनों प्रकृति सम्मत गुण हैं। ये तीनों ही गुण योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है, उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुयायी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्मस्वरूप आध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्तवृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को कैवल्य भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। इसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गयी है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश ले सकता है तथा प्रवेश कर लेने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग–योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपनी

श्रीमद्भगवद्गीता में छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है —

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचन:।।

अर्थात्–युक्त योगी कहलाता ही वह है जो ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों, किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमश: अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी, मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है, मन सब शक्तियों का भण्डार है।

इन्द्रियाँ उसको अपने–अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती हैं। अत: वह इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्धादि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप, रस गन्धादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा–लौटाकर धारणा के द्वारा एकाग्र करे। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है। यह योगी की पहली वर्णाक्षरी है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा–ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है, एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो सकता है। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति संभवत: नहीं समझता होगा। अत: थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान–विज्ञानतृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना। ये सब कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उन पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों–ज्यों साधक आत्म–साक्षात्कार के निकट पहुँचता है, त्यों–त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभ ज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार प्रात:कालीन ऊषा में हर व्यक्ति को धुंधले–धुंधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं, उसी प्रकार योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म–भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान के साथ–साथ दूर–दूर की बातें सुनना, दूर–दूर की वस्तुओं को स्पर्श करना आदि–आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाती हैं। इन सब शक्तियों के उदय हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धिवृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अत: किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से

रहने लगते है। वह वासना, तृष्णा के जाल से बिलकुल ही दूर हो जाता है। प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद सब मिट जाते हैं।

अतः योग–विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अधिकार भेद से इसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार–भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति–पाँति से सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है न कि एम.ए., आचार्य आदि का। हाँ ! शनैः शनैः पढ़ता हुआ पहली, दूसरी, तीसरी आदि कक्षाओं को क्रमशः उत्तीर्ण करता हुआ अन्त में वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ वह उच्चकोटि का विद्वान कहलाने लगेगा। इसी प्रकार से योग–विद्या का विद्यार्थी भी शनैः शनैः क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य ही पहुँच जायेगा, किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग एवं लययोग किस रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से अधिक उत्थान हो सकता है, इस बात को उसके शिक्षक ही समझेंगे और वे अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे।

'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण'

✦ *लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान् का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना यह 'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण' होना है।*

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलालजी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

योगाचार्य डा. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस विज्ञान को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किंतु जन्म कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगीजन ही इन रहस्यों को जानते है। योग अमर व अतुल विद्या है, इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय-समय पर भगवान स्वयं प्रसार करते हैं या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार-प्रसार करते है। मध्य काल के भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पनान्तजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारुणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष है।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही 'काकनाड़ी संहिता' में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गई है। आपका परमपावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 को चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् पंडित गड्डाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साँईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई-कई महिनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, वर्षा कर देना आदि आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रगट रहने लगी।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल जी बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति

दूर-दूर तक फैल गई थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ भगवान ने महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानवमात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्यसिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दु:खद्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षरवाला यह नाम धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दु:ख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्‌भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताश्री ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वासों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्याध्ययन करने लगे।

एक दिन एक छात्र ने एक चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए है। उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्‌भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभुजी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गई। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। "भैरवी चक्र" जैसे तांत्रिक प्रयोगों से स्त्री-पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिए मिटा दी गई। आप पर भी कई तांत्रिक प्रयोग हुए किंतु सब निष्फल रहे। तीर्थयात्रा करते-करते आप श्रीवृन्दावनधाम आये। वहाँ समस्त बृज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दु:खी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सवाँई गाँव आये। गाँव में डा. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव से बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्नतया समाधि में बैठ सकें। यहाँ श्री प्रभुजी दो-ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की- 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार

त्याग दें, हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा– 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।' एक दिन प्रातःकाल की बेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा– 'हम गुफा वाले बाबा हैं। नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी। सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई– 'चिन्ता मत करो, दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई– 'पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मभाव को पाकर मेरी चिति शक्ति में समा जायेंगे।'

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर विद्या योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उद्घाटित की जो **'जीवन तत्व साधन'** के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में अमृतसर में तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगी। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्भुत क्रियायें स्वतः ही होने लगती है।

आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरूढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। आपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है।' उन्होंने अपने योग साधकों का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सद्गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते हैं। गुरुगीता का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है–

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

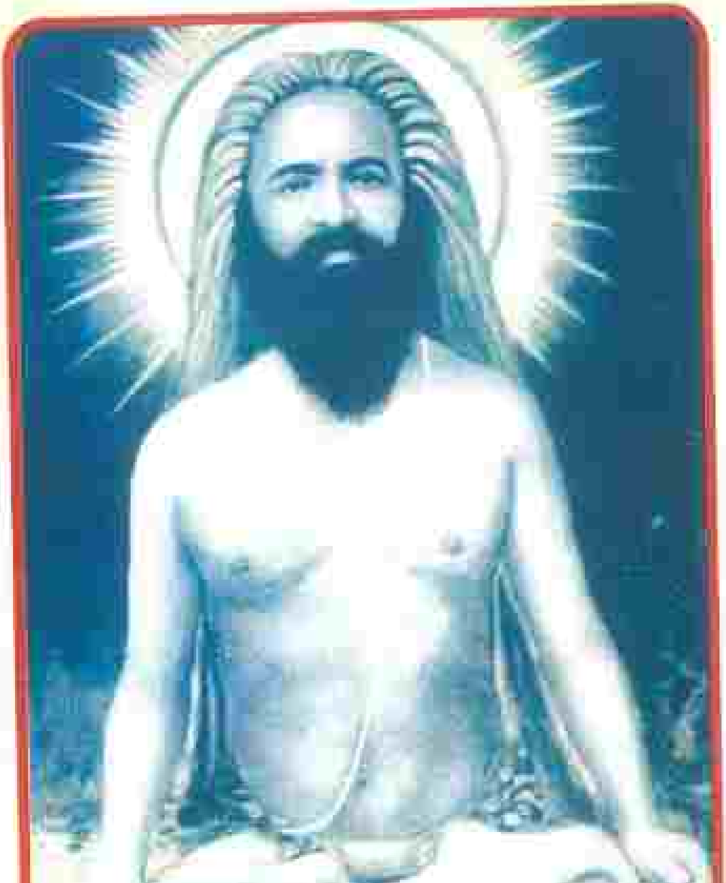

दादा गुरुदेव

योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नमः श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सर्व व्यापक हैं, परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्प्रभु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। वर्तमान युग में श्री प्रभुजी से ही सिद्धयोग परम्परा का सूत्रपात पुनः हुआ है। इसमें सिद्धगुरु के संकल्प मात्र से दिव्य क्रियायें स्वतः होती हैं। सत्य तो यह है कि गुरुकृपा के बिना योग विद्या का वास्तविक प्रकाश प्रकट नहीं होता है।

आनन्दकन्द करूणा वरूणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 121 वाँ प्राकट्य दिवस 1, 2 व 3 अप्रैल 2009 को श्री सिद्धगुफा सवांई धाम समेत देश–विदेश में अत्यन्त हर्ष व उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। इस परम पावन बेला पर परम प्रभु के चरणों में कोटि–कोटि नमन है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा–
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै–
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूप से नष्ट हो गई हैं– वे सुख–दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

अष्टांग योग-3

डा. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

अपने परमात्मस्वरूप को भूलकर अज्ञान के आवरण में परमात्मशक्ति को ही अपना बल समझकर मिथ्या जीवभाव के अहंकार, शक्ति, ऐश्वर्य का दूसरी जीवात्माओं पर प्रदर्शन करते हैं, उनमें परमात्मतत्व को न पहचान कर उनसे द्वेष तथा दुश्मनी का व्यवहार करते हैं। उसका दुष्परिणाम यह होता है कि इन नीच भावनाओं में बहकर आसुरी योनियों में चले जाते हैं; बार-बार प्रत्येक जन्म में निम्न तथा अशुभ योनियों में अपने दुष्कर्मों का फल भोगते हैं। इस प्रकार सांसारिक इच्छाओं के कारण जीवात्माओं की अधोगति होती है। सतोगुण के प्रभाव में पुण्यकर्म करने वाली जीवात्मायें भी स्वर्गलोकादि दिव्य लोकों में सुख भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में ही जन्म लेती है। इस प्रकार

एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना: गतागतं कामकामा: लभन्ते

अर्थात इन्द्रियों के विषय-भोगों को भोगने की इच्छा वाले जीव प्रकृति के तीन गुणों केवशीभूत होकर तीनों वेदों में वर्णित चौरासी लाख योनियों में जन्म-मृत्यु का आवागमन करते रहते हैं। अत: सांसारिक इच्छायें ही संसार बनाती हैं तथा उनका पूर्णरूपेण पंच क्लेशरूपी मूलसहित त्याग करने वाले इस बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। यह पंचक्लेश भी त्रिगुणात्मक माया का आवरण है और जो साधक योगसिद्धि के द्वारा उस आवरण को हटा देता है वही अध्यात्मसिद्धि का अधिकारी है ऐसी परमात्मा की वाणी है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुखै: विमुक्तो अमृतमश्नुते।।

अर्थात जो देहधारी जीवात्मा देहाध्यास से उत्पन्न तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वही जन्म-मृत्यु तथा जरादि दु:खों से सदैव के लिए मुक्त होकर अमृतत्व का पान करता है यानि परमात्मा के सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

गणितीय सूत्र का संक्षेप में विश्लेषण

यह सूत्र शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर अध्यात्म की गणितीय रूपरेखा है। सूत्र के तीन गुणनखण्ड अध्यात्म-सिद्धि के तीन प्रमुख मार्गों का संकेत करते हैं। हम तीनों मार्गों का संक्षेप में वर्णन करेंगे। जिज्ञासुओं के लिए मोक्षदाता शास्त्रों में विस्तृत वर्णन मिल जायेगा। यहाँ पर हम संक्षेप में सांकेतिक परिचय ही देने का प्रयास करेंगे।

तीन मार्गों में तीन अवयव यानि पूर्वजन्मों के संचित अध्यात्म-संस्कार (I), वैराग्य (R) तथा अभ्यास (Y,M) का विशेष योगदान है जोकि अध्यात्म-सिद्धि की आधारशिला है।

किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए अधिकारत्व परमावश्यक होता है और यह तीनों अवयव अधिकारत्व का निर्माण करते है। जब जीवात्मा मनुष्ययोनि के अतिरिक्त अन्य शरीर को धारण करती है तब आध्यात्मिक पुरुषार्थ शून्य होता है तथा R=O, क्योंकि अन्य योनियाँ भोगयोनियाँ है। किन्तु परमात्मा की अहैतुकी कृपा के परिणामस्वरूप उसके अध्यात्म–संस्कार (I) का नाश नहीं होता, ऐसी उन करुणासागर की प्रतिज्ञा है कि "नहि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।" अतः जन्म के समय S=I की स्थिति बनी रहती है, यद्यपि संस्कार सुप्तावस्था में रहते है। मनुष्य–योनि में भी परमात्मा के कृपाप्रसाद से S>.I की स्थिति बनी रहती है किन्तु आध्यात्मिक उत्थान के लिए पर्याप्त वैराग्य (R>1) तथा पुरुषार्थ की विशेष आवश्यकता है तभी इस प्रयत्न के सापेक्ष के साथ ईश्वर–कृपा तथा गुरुकृपा परम लक्ष्य की ओर ले जाते है। इसमें भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है वेदशास्त्र का यह निर्देश कि–

यदेव विद्यया करोति श्रद्धोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तर भवति। (छान्दो. 1/1/10)

अर्थात विवेकज्ञानपूर्वक परमश्रद्धाभक्ति से किया गया पुरुषार्थ अतिशीघ्र फलदायी होता है। साधक की आध्यात्मिक प्रगति में तीनों मार्गों का अंशदान होता है, फिर भी साधक को अपने स्वभाव के अनुकूल मार्ग चुनना चाहिए। स्वभाव पूर्वसंस्कारों का प्रतीक है, अतः परमात्मा का यही निर्देश है कि स्वभाव के अनुकूल साधना ही फलदायी होती है।

एक और मूल बात ध्यान में रखना है कि परमात्मा का स्वरूप अनन्त है, उसका ज्ञान भी अनन्त है और यह ज्ञान क्रिया–साध्य नहीं है। अतः अध्यात्म की सिद्धि उस परात्पर विशुद्ध ब्रह्म की कृपा के बिना सम्भव नहीं। विशुद्ध ब्रह्म का प्रतीक केवल वो सगुण सत्ता है जो स्वयं गुणातीत अवस्था में रहते हुए भी जिज्ञासु जीवात्माओं की मुक्ति के लिए ही सगुण तथा साकार रूप में कृपा की वृष्टि करते हैं और उनके कृपा–प्रसाद से ही अध्यात्म की एक्सपोनेन्सियल वृद्धि होती है जिसमें अनन्त की ओर ले जाने की सामर्थ्य है। बस केवल एक अपेक्षा है जिसका संकेत महर्षि व्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में किया है कि–

कृतप्रयत्नापेक्षः तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादित्यः

अर्थात् शास्त्रों के विहित तथा निषिद्ध कर्मों की सार्थकता के लिए प्रयत्न की अपेक्षा है। इसी अपेक्षा को बीज बनाकर विशुद्ध ब्रह्म के प्रतीक ईश्वर तथा सद्गुरुदेव की कृपा–वृष्टि का लाभ उठाइये। स्वयं भगवान शिव ने अपने उपदेश में इसी ओर संकेत किया है कि–

पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेनराह संगतिम्।
ततः सिद्धस्यकृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत् विधे।।

अर्थात् शास्त्रों के द्वारा उपदेशित कर्मों के पुरुषार्थ से पुण्यों को अर्जित करें जिसके

फलस्वरूप सिद्धों की संगति मिलती है। तत्पश्चात् सिद्ध की कृपा से योगी बनो। योगी बनकर ही अविद्या का संसार नष्ट होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। योग के बिना ज्ञान मोक्षदाता नहीं बनता। इसका कारण यही है कि योगानुभूति के बिना ज्ञान केवल शब्द–ज्ञान है। शब्द–ज्ञान से जीवात्मा तथा परमात्मा की अभिन्नता का अनुभव नहीं होता।

इस साधना में यह सदैव याद रखना है कि जीवात्मा का पिता परमात्मा है जो सदैव हितकारी है तथा कल्याणस्वरूप है। इसीलिए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि–

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिः अहं बीजप्रदः पिता।।
तदेव चाद्यम् पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् समस्त योनियों में जितनी भी जीवात्मायें जन्म लेती हैं उन सब की अक्षर ब्रह्म महद् योनि है तथा सगुण परमात्मा ही उनका पिता है। अतः कल्याणकांक्षी को उस कल्याणस्वरूप परमात्मा के समक्ष समर्पण ही सर्वोत्तम साधना है। एक और बात सदैव ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा कर्माध्यक्ष है और अपने अंशरूप जीवात्मारूपी बच्चों को अपनी प्रकृतिरूपी उँगली पकड़ा कर कर्मरूपी चलना सिखाता है तथा गिर पड़ने पर उठाता भी है। यही संदेश भगवान श्रीकृष्ण ने दिया है कि–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदयं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिं ऋच्छति।।

अर्थात् यज्ञ तथा तपादि सभी पुण्यकर्मों का भोक्ता परमेश्वर ही है, वही समस्त प्राणियों का मोक्षदाता परममित्र है। जो इस रहस्य को जान जाता है उसे ही परमशान्तिरूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यह तीनों मार्ग परस्पर इस प्रकार सहायक हैं कि किसी मार्ग का पुरुषार्थ दूसरे मार्ग में भी यथावत् योगदान करता है। इसी कारण यह स्वतन्त्र न होकर अवयवों के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े भी हैं तथा गुणनखण्ड होने के नाते अध्यात्म–सिद्धि में समान महत्व रखते हैं। सर्वाधार, सर्वनियन्ता तथा सर्वसाक्षी परमात्मा ने स्वयं यह दायित्व लिया है कि परमार्थ के लिए किया गया प्रयत्न कभी नाश नहीं होगा, क्योंकि

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशः तस्य विद्यते

अर्थात् हे अर्जुन! अध्यात्मसिद्धि के लिए किये गये पुण्य–कर्म का नाश नहीं होता, न इस लोक में और न मृत्यु के पश्चात्।

योगी की समाधिगत अवस्था

डा. राजकुमारी त्रिखा, दिल्ली

योग की उच्च भूमियों में प्रवेश होने पर साधक का मन ध्येय विषय में निमग्न होने पर सांसारिक परिवेश से अनभिज्ञ हो जाता है। उसमें विषय भोगलिप्सा नहीं रहती। समाधि में ही उसे परमानन्द का अनुभव होता है। मन के विक्षेप शान्त होने पर वह समाधिलीन ही रहना चाहता है। योगी का मन उसी प्रकार निश्चल हो जाता है जिस प्रकार वायु रहित स्थान में जलते हुए दीपक की शिखा (लौ) निश्चल जलती रहती है। उसके आस-पास कितना भी कोलाहल क्यों न मचाया जाये, उसकी समाधि भंग नहीं होती। भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर को इसी तथ्य का निरुपण करते हुए कहते हैं- जिस प्रकार तृप्त हुआ मनुष्य सुखपूर्वक निद्रामग्न रहता है उसी प्रकार योग युक्त पुरुष के मन में भी सदा प्रसन्नता रहती है। वह समाधि में लीन रहना चाहता है, विरत नहीं होना चाहता। यही उसकी प्रसन्नता की पहचान है। जिस प्रकार तेल पूरित दीपक वायु शून्य स्थान में एक तार निश्चल रूप से जलता रहता है, उसकी शिखा स्थिरता पूर्वक ऊपर की ओर उठी रहती है, उसी प्रकार समाधिनिष्ठ योगी को मनीषी पुरुष स्थिरमना कहते हैं। जिस प्रकार मेघ द्वारा बरसाई हुई वर्षा की जल बिन्दुओं से पर्वत नहीं कांपता, उसी प्रकार अनेक प्रकार के विक्षेप भी योगी को विचलित नहीं कर सकते। उसके समीप बहुत से शंख नगाड़े बजाये जायें, भाँति-भाँति के गाने गाये जायें तो भी उसका ध्यान भंग नहीं होता। यही उसकी सुदृढ़ समाधि का लक्षण होता है। यथा-मनोनिग्रह-शील व्यक्ति सावधानी पूर्वक हाथों में तेल से भरा कटोरा लेकर सोपान आरोहण करे व तभी बहुत से पुरुष हाथ में तलवार लेकर उन्हें डराने धमकाने लगें तो वह उनसे भयभीत होकर बूँद मात्र तेल भी पात्र से गिरने नहीं देता, उसी प्रकार योग की उच्च अवस्था को प्राप्त हुआ एकाग्रचित-योगी, इन्द्रियों की स्थिरता तथा मन की अविचल स्थिति के कारण समाधि से विचलित नहीं होता। योगसिद्ध मुनि के ऐसे ही लक्षण समझने चाहिए।

ऐसी स्थिर व एकाग्र मानसिक स्थिति में उसे अपने शरीर की भी सुधबुध नहीं रहती। वह पर्वत की भाँति स्थिर व काष्ठ की भाँति निष्कम्प व पत्थर अविचल हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं तथा मन में कोई संकल्प नहीं उठता। ऋषि वशिष्ठ राजा जनक को योगोपदेश देते हुए कहते हैं-

जब योगी मन के द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रियों को तथा बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर करके प्रस्तर समान अविचल, शुष्क काष्ठ की भाँति निष्कम्प तथा पर्वत की भाँति स्थिर रहने लगे, तभी शास्त्रज्ञ विद्वान उसे योगयुक्त कहते है। जिस समय योगी न तो कानों से सुनता है,न नासिका से सूँघता है, न स्वाद ग्रहण करता है न देखता है तथा न ही स्पर्श का अनुभव करता

है, जब उसके मन में किसी प्रकार का संकल्प नहीं उठता तथा वह बाह्य जगत से संज्ञा शून्य हो जाता है उस समय मनीषी पुरुष उसे अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त एवं योगयुक्त कहते हैं। वह उस अवस्था में वायु रहित स्थान में जलते हुए निश्चल शिखा वाले दीपक के समान प्रकाशित होता है। उसका लिंग शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। निश्चलता के कारण उसकी ऊपर, नीचे अथवा मध्य में भी कहीं गति नहीं होती।

योगी की इस प्रकार की निश्चल व एकाग्र मानसिक अवस्था की चर्चा महाभारत में अनेक स्थलों पर पाई जाती है। श्री मद्भगवद्गीता में भी योगी के निश्चल चित्त की उपमा निर्वात स्थान में निष्कम्प जलती हुई दीप शिखा वाले दीपक से दी गई है।

यह उपमा इतनी सटीक व भावसम्प्रेषण में सक्षम है कि कवि कालीदास ने भी भगवान शिव के समाधिलीन चित्त की तुलना वायु रहित स्थान में जलने वाली निष्कम्प दीपशिखा से दी है। समाधिलीन योगी का शरीर व मन दोनों ही निश्चल रहते हैं।

शोक संवेदना

● अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि पचपटिया जि. बनारस के पुराने गुरुभाई आदित्य नारायण का 22 जनवरी को देहावसान हो गया है। इनके परिवार में सुरेन्द्र महेन्द्र, अशोक आदि चार पुत्र हैं। वे 75–76 वर्ष के थे। इस दु:खद बेला शोक संतप्त परिवार को सिद्ध योग परिवार अपना हार्दिक संवेदना प्रेषित कर रहा है।

● डॉ. ऋषिराज वशिष्ठ के पिता जी श्री शिवप्रसाद शर्मा का 11 जनवरी 2009 को निधन हो गया। वे श्री बृज मोहन वशिष्ठ के बड़े भाई थे। उनके निधन पर भी सिद्धयोग परिवार व आश्रमवासी शोक संवेदना भेज रहे हैं। दु:खी परिवार को दु:ख सहने की प्रभुजी शक्ति दें।

–सम्पादक सिद्धयोग

संस्मरण

डा. रविन्द्र कुमार जौहरी, लखनऊ

हाँ। कर्मयोगी ही उन्हें कहना उपयुक्त होगा। जीवन में सभी दायित्व उन्होंने एक कर्मयोगी की तरह ही निभाये।

भाई रमेश चन्द्र दीक्षित जी ने लखनऊ के हीवेट पॉलीटेकनिक से सिविल इंजीनियरिंग का डिप्लोमा पास किया। उनकी इच्छा इंजीनियरिंग का डिग्री कोर्स पास करने की थी किन्तु वे उस समय–बड़ी बहन का विवाह, छोटे भाई की शिक्षा व पूज्य माताजी के साथ परिवार का भरण–पोषण की जिम्मेदारियों के कारण नहीं कर पाये, किन्तु इस इच्छा को उन्होंने पूरा किया छोटे भाई को दो विषयों (सिविल और मेकेनिकल) में इंजीनियरिंग ग्रेजुएशन करवा कर व स्वयं AMIE करके।

वे जो भी जिम्मेदारी लेते उसे पूरी सूझबूझ और पूर्ण क्षमता से पूरा करने की चेष्टा करते थे, इसीलिये वे देश के कुशलतम Architect Engineers में गिने जाते थे। अपने समय के सबसे सुन्दर व महंगे सिनेमाघर–राजमंदिर का निर्माण, जयपुर में उन्हीं की देन है। यही नहीं कई पाँच सितारा होटल व जयपुर एवं जोधपुर की महंगी व सुन्दर आवासीय कालोनियाँ बनवाने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है।

मेरा श्री रमेश भाई से परिचय सन् 1964 में रिशरा (प. बंगाल) में हुआ था, जब वे जे. के. स्टील लि. संस्थान में वरिष्ठ इंजीनियर थे। उसी के कुछ समय पूर्व उनका विवाह सौ. ऊषा देवी से हुआ था, जो उस समय उनके साथ ही थी।

सौभाग्यवश इन्ही दिनों हमारे परम पूज्य गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, योग प्रचार कार्यक्रम हेतु श्री हरियाणा भवन, विवेकानन्द रोड, कलकत्ता में पधारे हुए थे और मैं अपनी पूज्य माँ के साथ उनके दर्शन करने व सत्संग हेतु रोज हरियाणा भवन जाता था और दिन भर उनकी कृपाओं की चर्चा ही होती रहती थी। उन्हीं को सुनकर भाई जी की जिज्ञासा भी बढ़ी और वे भी हम लोगों के साथ श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ व सत्संग हेतु हरियाणा भवन जाने लगे।

श्री प्रभुजी के दर्शनों से भाई जी बहुत अधिक प्रभावित हुए और श्री प्रभुजी से योग दीक्षा के लिए प्रार्थना की। श्री प्रभुजी ने इलाहाबाद में माघ मेला में दीक्षा देना स्वीकार किया।

अगले वर्ष 1965 में भाई जी माघमेले में दीक्षा लेने आये और श्री प्रभुजी ने मंगल/शनि को उन्हें दीक्षा देने का निर्णय लिया, साधारणतः श्री प्रभुजी उस दिन किसी को दीक्षा नहीं देते थे। इत्तफाक से उस दिन अवकाश होने के कारण शहर के बाजार बन्द होने के

कारण दीक्षा का सामान, थाली, कपड़े आदि अपराह्न 2 बजे तक नहीं मिले, लेकिन श्री प्रभुजी उन्हें दीक्षा देने के लिए बिना भोजन ग्रहण किये प्रतीक्षा करते रहे। दीक्षा के उपरांत श्री रमेश भाई की बहुत अच्छी स्थिति चली। हर समय श्री प्रभुजी में ही लीन रहते और अपने जीवन को उन्होंने पूरी तरह से श्री श्री प्रभुमय बना लिया। हर समय श्री प्रभुजी की जीवन लीलाओं की चर्चा करना और उन्हीं की आज्ञाओं के अनुरूप ही आचरण करना उनका ध्येय बन गया।

योग दीक्षा लेने के बाद भाई जी ने श्री प्रभुजी के चरणों का योग प्रचार बड़े ही उत्साह से आरम्भ कर दिया और दुर्गापुर में बड़े जोर–शोर से कई वर्षों तक वे श्री प्रभुजी का प्रोग्राम कराते रहे। इसके बाद जब वे जयपुर आ गये तो उन्होंने श्री प्रभुजी का प्रोग्राम जयपुर में करवाना प्रारम्भ किया। अन्त समय तक वे बड़े मनोयोग से श्री सवाई आश्रम से जुड़े रहे व निस्वार्थ सेवा करते रहे।

भाई जी का पूरा जीवन पूर्ण रूपेण प्रभुमय व चमत्कारों से भरपूर रहा। उन्होंने कभी भी श्री प्रभुजी के चरणों में जो कोई भी संकल्प लिया वह श्री प्रभुजी की कृपा से तत्काल पूरा होता था। ऋषिकेश आश्रम में भाई मानिकचन्द जी शर्मा को प्रभुजी की पोशाक बनानी थी किंतु समुचित धन व्यवस्था नहीं थी। रमेश भाई ने संकल्प लिया, 2 घंटे में किसी गुरुभाई ने फोन से प्रार्थना की, कि उनकी इच्छा प्रभुजी की पोशाक बनवाने की है, इसकी व्यवस्था की जाये। तब ऋषिकेश आश्रम के व्यवस्थापक भाई पूर्णचन्द्र जी ने भी माना कि भाई जी आपके संकल्प श्री प्रभुजी बहुत तीव्रता से पूरा करते है।

श्री प्रभुजी रमेश भाई से कहा करते थे कि उन्हे रमेश भाई से आश्रम के बहुत से काम करवाने है और श्री प्रभुजी ने विभिन्न प्रकार से आदेशित करके आश्रम का मुख्य द्वार, ट्यूब वैल, तालाब आदि बनवाये व आश्रम में अनेक सुविधाओं जैसे ट्रेक्टर, स्टेबलाइजर, जेनेरेटर, इनवर्टर आदि में उनका सहयोग चिर स्मरणीय रहेगा।

अपने आश्रम में गुरुनिष्ठ तो बहुत लोग है और श्री प्रभुजी की कृपा तो सब पर बरसती ही रहती है और सभी के जीवन चमत्कारों से भरे पड़े है लेकिन रमेश भाई एक ऐसे व्यक्ति थे जो हर समय केवल गुरूजी की ही चर्चा करते थे, यहाँ तक कि टेलीफोन से भी बात करते समय घंटो वे श्री प्रभुजी की ही चर्चायें किया करते थे। वे हर समय परिचित–अपरिचित सभी की सहायता करने के लिए तत्पर रहते थे और सहायता करने के बाद कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते थे। बच्चों को किताबें, कॉपियाँ, डॉटपैन, टॉफियाँ बाँटना व सभी से निस्वार्थ प्रेम उनकी पहचान थी। आज भी श्री प्रभुजी व उन्होंने अपनी माँ के नाम से लखनऊ के हीवेट पालीटैक्निक कॉलेज में छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर रखी है।

रमेश भाई से मेरे बहुत प्रगाढ़ सम्बन्ध थे, मैं उन्हें बड़े भाई की तरह मानता था किंतु क्योंकि श्री प्रभुजी से दीक्षा मैंने उनसे पहले ली थी इसलिए वे मुझे अग्रज मानते थे। मेरा पूरा

परिवार ही उनसे बहुत प्रेम करता था और वे हमेशा इस परिवार के अभिन्न अंग की तरह रहे। उनका शरीर छूटने के कुछ समय बाद तक परिवारजनों का मन बहुत ही उद्विग्न रहा और वे श्री प्रभुजी के चरणों में विद्यमान प्रतीत होते रहे और उन्होंने कहा देखो मैं पहले आ गया और बहुत आनन्दित हूँ फिर उनकी ज्योति श्री महाप्रभुजी की महाज्योति में समाहित हो गई और लगा वे चिर शान्ति को प्राप्त हो गये हैं।

नीलाकाश सौन्दर्य

(श्रीमती) निर्मला चन्देल, उदयपुर (राज.)

नील–गगन में तारे चमके,
सरिता, सागर, झीलों के जल में,
चन्दा की रश्मि भी झलकी,
नील गगन के तारों में।
मानव मन चन्द किरण से अनुरागित हुआ,
स्वाति बूँद की अनुकंपा से,
नील गगन में तारे चमके,
मानव मन अनुरागित हुआ।
श्वेत चाँदनी से धवल हुआ तन,
मानव का अनोखा हुआ मन,
स्नेहानुकूल से हो गया चन्द मिलन,
अपने पन की आत्मा से हुआ प्रीति मिलन।
निश्छल, निर्मल तन मन से,
नील गगन के तारे चमके,
नीलाकाश में में चन्द्रमा चमके,
सात तारों की पंक्ति बनी,
चन्द्र किरण की धारा चमकी,
नील सागर चाँदनी से नील गगन हुआ,
नील गगन में तारे चमके,
मानव मन प्रसन्नचित हुआ।।

योग की गंगा बही गंगापुर में

हेमराज चोपड़ा मण्डी (हि.प्र.)

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 2008–09 में गंगापुर शहर जो राजस्थान राज्य के सवाई माधोपुर जिला में स्थित है, में योग शिविर का आयोजन किया गया था। यह शिविर 27 दिसम्बर 2008 से 2 जनवरी 2009 तक कुल 7 दिन का था। प्रत्येक दिन कुछ निश्चित कार्यक्रम होते थे; जैसे सुबह 5 बजे मंगला आरती, फिर लगभग एक घण्टा ध्यान, उसके बाद योगासन जिसमें जीवन तत्व साधन प्रमुख था, उसके बाद सुबह का नाश्ता तदोपरान्त कुछ देर आराम करने के बाद कीर्तन, भजन फिर सामूहिक आरती, फिर भगवत् गीता का दो या चार अध्याय का पाठ फिर योग पर आचार्य ब्रह्मचारी डा. दासलाल जी महाराज का प्रवचन। फिर लगभग दोपहर 12 बजे भोजन, फिर दो तीन घण्टे का आराम, फिर तीन बजे शाम से कीर्तन–भजन शुरू होता था, शाम सात बजे सामूहिक आरती फिर योग पर प्रवचन फिर भोजन, लगभग ग्यारह बजे रात्रि विश्राम।

इस योगशिविर में देश के कई राज्यों से संगीतकार और गायक आये हुए थे, जिनके मधुर भजनों को सुनने के बाद साधक आह्लादित होकर ध्यान मग्न हो जाते थे। राजस्थान ही क्या देश के अन्य राज्यों में आप शास्त्रीय संगीत और भजनों का लोहा मनवा चुके श्री सीता राम राव जी जो किसी के परिचय के मोहताज नहीं है, 28 दिसम्बर को योग शिविर में आकर परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज, योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के श्री चरणों में अपना कीर्तन, भजन सुनाना नहीं भूलते। पंडित पुरुषोत्तम शरण जी जो देश के कोने–कोने में एक जाने–माने, पहचाने, संगीतकार, कीर्तनकार तथा भागवत प्रवक्ता के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके हैं अपना बहुमूल्य समय योग शिविर में प्रत्येक दिन देते रहे हैं। उनका भजन **'देना है तो दीजिए जनम–जनम का साथ'** जब वो अपने श्री मुख से सुनाते हैं तो भक्त मण्डली झूम उठती है। बनारस घराने से सम्बन्धित भोजपुरी सम्राट श्री प्रदीप जी तथा साथी गुरुभाई श्री राघवेन्द्र जी, श्री महेन्द्र जी, श्री बबलू जी, रोहित, कुलदीप जब अपने भजनों को सुनाते थे तो मनुष्य क्या पशु–पक्षी भी भाव विह्वल हो जाते थे। सवाई मण्डल आगरा से पधारे विनोद नादान ने भी अपने भजनों के माध्यम से भक्तों को भरपूर मनोरंजन किया। हिमाचल से श्री मदन जी, हरियाणा से श्री जयकुमार जी तथा गंगापुर सिटी से श्री जय सिंह जी, श्री चन्द्रशेखर जी, श्री रामेश्वर खण्डेलवाल जी ने अपने भजनों से भक्तों को थिरकने के लिए विवश कर दिया जिसमें पंकज शर्मा ढोलक वादक का भी योगदान भरपूर रहा। वहाँ का वातावरण ऐसा बन गया था कि हिमाचल प्रदेश के श्री चोपड़ा साहब सवाई माधोपुर गंगापुर सिटी के परेश जी, श्री घनश्याम जी, हरियाणा से शमशेर जी ये ऐसे कुछ नाम हैं जिनकी ध्यान

स्थिति देखते बनती थी। सेवा भाव तो हरियाणा के राजेश सुनिल, गंगापुर सिटी से गोविन्द जी, गुड़िया जी, रामबाबू शर्मा, दीपक, मोनू इत्यादि भक्तों में जितना था उतना कहीं नहीं देखा गया। 31 दिसम्बर के रात्रि 9 बजे वाराणसी से आये आशुतोष कुमार भगवान शिव के रूप में तथा बालक सूरज वीरभद्र के रूप में जब शिविर पण्डाल में पहुँचे तो लगा साक्षात् रूद्र देव गंगा को सिर पर लिए कैलाश से आ गये हैं उस वक्त चारों तरफ बम–बम काशी बोल रहा की गूँज होने लगी। श्री मदन जी वाराणसी ने भी नृत्य के माध्यम से खूब मनोरंजन किये।

चूँकि इस वर्ष 2009 के विजय दशमी को हम सभी अपने गुरुदेव योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्म शताब्दी मनाएंगे, इसलिए पहली जनवरी से ही इसकी धूम–धाम से तैयारी में जुट गये। एक जनवरी 2009 गुरुवार के दिन सुबह आरती और गीता पाठ के बाद जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में लगभग तीन हजार भक्तों ने 9 बजे आचार्य श्री दासलालजी, ब्र. मोहन स्वरूप योगी जी, ब्र. महावीर जी तथा श्री दयाशंकर पाण्डेय जी के निर्देशन में भगवान नरसिंह मंदिर कालोनी स्थित सिद्ध योग आश्रम से नगर शोभा यात्रा निकाली। परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दिव्य स्वरूप को रथ पर विराजमान करके शोभा यात्रा को लेकर आगे बढ़े। यात्रा में भक्तजन परम प्रभु रामलाल जी महाराज की जय, योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जय, सिद्ध सवाई धाम की जय, हर हर महादेव तथा उठो सोने वालों जगाने वाले आ गये, योग का डंका बजाने वाले आ गये' जैसे जय जयकारों और भजनों से चार चाँद लगा रहे थे। कुमारी रचना शर्मा, राधा शर्मा इत्यादि गुरु बहनें भी उक्त शोभा यात्रा में अथक सहयोग दे रही थीं। यात्रा के दौरान नगर वासी जगह– जगह पर शोभा यात्रियों को केशर युक्त दूध पिलाकर तथा फल मिठाईयाँ खिलाकर गर्मजोशी से सत्कार कर रहे थे। अपनी–अपनी छतों से क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम सभी वर्ग के लोग यात्रियों पर फूलों की वर्षा कर रहे थे। लगभग 3 कि. मी. की यात्रा पाँच घण्टे में पूरा कर भक्त जन शोभा यात्रा को लेकर सिद्धयोग आश्रम में आ गये।

योग शिविर में श्रद्धेय आचार्य ब्रह्मचारी डा. दासलाल शर्मा जी ने अपना व्याख्यान, सिद्धगुरु परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योग योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के वचनों, भगवत गीता तथा पातंजलि योग सूत्र को आधार बनाकर दिये। आचार्य जी ने अपने प्रवचन के माध्यम से योग की महिमा का स्पष्ट चित्रण किया। उनका कहना था कि हम शरीर बद्ध जीव हैं, इसलिए पहले शरीर, फिर प्राण, श्वसन उसके बाद विचारों पर मनन करते हैं। योग विद्या वैज्ञानिक है गणितीय है। हम देखते हैं समाज में कोई हमारी प्रशंसा कर दिया, हम फूले नहीं समाते, वहीं कोई गाली दे दिया हम उसे मारने को दौड़ते हैं। चूँकि शरीर स्थूल है, मन सूक्ष्म है, उपरोक्त सभी परिस्थितियों में शरीर की भाव भंगिमा बदली नजर आती है। हम क्रोध करते हैं, चिन्ता करते हैं या प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, इन सारी परिस्थितियों में हम गौर से देखें वो नहीं रह जाते जो पहले थे। हमारे शरीर का हाव–भाव बदल जाता है, श्वास के

आने–जाने में परिवर्तन हो जाता है, विचार बदल जाते हैं। शरीर, श्वास और विचार एक दूसरे की स्थिति पर निर्भर है। उनका कहना था कि योगी को कोई गाली दे या प्रशंसा करे उससे विचलित नहीं होता, भगवत गीता के बारहवें अध्याय के 18–19 वें श्लोक का उदाहरण देते हुए–

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः,
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।। (18)
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टोयेन केनचित्,
अनिकेतः स्थिर मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। (19)

हमने भक्तों को बताया कि भगवान को वही प्रिय होता है जो सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख इत्यादि द्वन्द में भी सम है अर्थात् आसक्ति रहित है। शत्रु–मित्र, मान–अपमान से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। निन्दा–स्तुति को समान समझने वाला, मनन शील, ममता से रहित, जिस प्रकार भी शरीर का निर्वाह हो सदा सन्तुष्ट रहे वही योगी है। कोई भी चीज सोचने मात्र से ही परिवर्तित नहीं हो जाती, उसके लिए परिस्थितियों का भी निर्माण करना पड़ता है। खान–पान से भी पड़ने वाले प्रभावों को आचार्य जी ने योगाभ्यासियों को बताया।

इस तरह गंगापुर शहर में 7 दिन का योग शिविर बड़ा ही आनन्ददायक रहा। इसमें कई असाध्य बीमारियों के इलाज सरल और सुगम तरीके से बताये जाते थे। आयुर्वेद के ऊपर भी आचार्य जी ने प्रकाश दिया। शिविर में पूरी भारतीय पद्धति छाई रही। निराश व्यक्ति जिसको कहीं आशा और विश्वास दिखाई नहीं पड़ रहा था पूरे उल्लास के साथ वापस गया। शिविर से सभी ने अनुभव किया कि योग की राह पर चलने पर ही जीवन खुशहाल रह सकता है वरना नहीं। उक्त शिविर में पधारकर लोगों ने योग की महिमा का स्पष्ट दर्शन किया। सोने–जागने, उठने–बैठने, चलने–फिरने सब क्रिया अगर योग को ध्यान में रखकर किया जाये तो रोग–व्याधि कभी पास नहीं आ सकता। इस मंत्र और चेतावनी के साथ योग शिविर का समापन 02 जनवरी 2009 को श्री चन्द्रशेखर गुप्ता जी के आवास पर कर दिया गया।

जयगुरुदेव

ध्यान, धारणा और समाधि, है गीता का ज्ञान,
योगी सबको बनना है, सबका है अरमान।

जहाँ गायें प्रसन्न रहती हैं, वहाँ समस्त संपदाएँ प्रसन्न होकर प्राप्त रहती हैं और जहाँ गायें दुःखी रहती हैं, वहाँ संपदाएँ दुःखी होकर लुप्त हो जाती हैं।

योग प्रकाश के दाता महाप्रभु रामलाल जी

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

परम कृपा निकेतन आनन्दकन्द श्री रामलाल महाप्रभुजी ने परम कृपा को करने के लिए एक ही समय में अनेक शरीरों की रचना की वह भिन्न–भिन्न स्थानों पर एक ही समय पर कल्याण कार्य करते रहे, जैसे– नासिक में उन्होंने दो शरीर धारण किये, दरभंगा बिहार के जंगलों में भी उन्होंने अपने शरीर की रचना की, अमृतसर पंजाब में पंडित गंडाराम जी के घर में भी उन्होंने अपना प्रादुर्भाव दरर्शाया। अवतारों के भी महाअवतार श्री श्री महाअवतार बाबा जी के रूप में श्री श्यामाचरण जी को मिले, श्री गोरखनाथ जी के गुरुदेव भगवान मत्स्येन्द्रनाथ जी भी श्री रामलाल महाप्रभु जी ही थे और भी न जाने उन्होंने कितने शरीर धारण किये। एक शरीर उन्होंने पाकिस्तान में लालदास जी के नाम से धारण किया था। उनकी शिष्य परम्परा में महात्मा पंजाब और सहारनपुर में बड़ा आश्रम चलाते हैं उनके यहाँ श्री महाप्रभु जी का स्वरूप आज भी स्थापित है। जिस समय श्री रामलाल महाप्रभु जी अपना स्थूल शरीर त्याग कर हिमालय को जाना चाह रहे थे उस समय तार देकर हमारे सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी को अपने पास बुलाया। वह तत्काल श्री रामलाल महाप्रभु जी के श्री चरणों में पहुँच गये। सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी को श्री रामलाल महाप्रभुजी के शरीर छोड़ने का पूर्वाभास हो गया था उनके मन में दुःख हुआ और आँखों में आँसू आ गये। यह कृत्य देखकर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने श्री चन्द्रमोहन जी को समझाकर कहा– ''क्यों रोता है'' श्री चन्द्रमोहन जी ने कहा कि ''प्रभुजी मुझे लगता है कि आप शरीर छोड़ना चाहते हैं।'' इतना सुनकर तुरंत महाप्रभु श्री रामलाल जी ने कहा कि ''हम तो हजारों शरीर धारण करते हैं, हजारों छोड़ते हैं, यह हमारा नित्य प्रति का कार्य है, तू किस–किस के लिए शोक करेगा।'' श्री रामलाल महाप्रभु जी ने जिस दिन शरीर छोड़ा सब शिष्यों को अपने पास से हटा दिया था उस समय उनके पास हमारे सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी एवं योगिनीमाता द्रौपदी देवी जी ये दोनों विद्यमान थे।

सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने अनेक बार कहा है कि हमने अच्छी प्रकार से देख लिया है कि जहाँ भी यौगिक चमक दिखाई देती है वह सब किसी न किसी प्रकार से योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी की ही दी हुई है या उनके शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा ही प्रदान की गई है। सबके मूल में परम करूणामय आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी ही हैं। आज वह श्री रामलाल महाप्रभु जी द्वारा शक्तिसंचारित लोग या उनके द्वारा संचालित संस्थायें बहुत ख्याति को प्राप्त हो गये हैं। उनका समाज में भारी प्रचार है श्री सद्गुरुदेव जी कहते थे कि यदि हम यह बात बताते हैं तो अमुक संस्था या उसके संचालक पर श्री रामलाल महाप्रभु जी की

कृपा रही है तो वह लोग न जाने इस बात को किस ढंग से लें, जबकि यथार्थ बात तो यह है ही कि जहाँ भी योग की चमक है वह सब किसी न किसी प्रकार से उन्हीं परम करुणामय श्री रामलाल महाप्रभुजी द्वारा ही दी गई है।

श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के समय में हमने अच्छी प्रकार से देखा है कि श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी के पास बहुत–बहुत लोग शक्तिपात लेने, कृपा लेने, पुष्प प्रसाद लेने, योग साधन सीखने, आत्म कल्याण प्राप्त करने आया करते थे। उनसे साधन सीखकर कृपा प्राप्त करके कितने ही लोगों ने अपने योग केन्द्र स्थापित किये जहाँ से वह यौगिक शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। परन्तु इसमें से कुछ लोग ही महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के प्रति कृतज्ञ हैं और उनका नाम लेकर कहते हैं कि हमें जो कुछ प्राप्त हुआ है वह योगीश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के सिद्ध दरबार से महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के द्वारा प्रदान किया गया है नहीं तो बाकी लोग तो यही दरशाते हैं जैसे वह सदा से योग के ज्ञान से विभूषित थे। जबकि लाखों लोगों ने सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी से सिद्धयोग का दान लिया और उन्होंने भी बिना किसी पूछताछ या लोभ लालच फीस आदि के बिना ही तत्काल पात्र जीवों को सिद्धयोग का दान दिया। इसके अन्तर्गत हम प्रख्यात संत श्री आशाराम जी का महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के पास जाने का वर्णन करेंगे जो अति संक्षेप में बिल्कुल सत्य–सत्य इस प्रकार है। बापू श्री आशाराम जी हमारे एक सिन्धी गुरुभाई श्री थिरवानी जी जो टेलीफोन एक्सचेंज में नौकरी करते थे के साथ श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के दर्शनों को ऋषिकेश योग साधन आश्रम में आये थे उनके साथ उस समय बिरला घाट वाले बाबा भी थे उन्होंने बापू श्री आसाराम जी से यह कहा था कि आसाराम तुम सिद्ध पुरुष के दर्शन करना चाहते थे, थिरवानी के गुरुदेव सिद्धपुरुष हैं। जिस समय यह महापुरुष सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के समक्ष पहुँचे तो उनकी सादगी और उज्वलम योग्यता को देखकर दंग रह गये कि इतने बड़े सिद्ध पुरुष और अति साधारणता में। सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने दोनों महात्माओं को बाँस की कुर्सियों पर बैठाया और बापू श्री आसाराम जी ने बन्द कमरे में गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी से गहन मन्त्रणा की जिसका विवरण यहाँ देना उचित नहीं।

✦ ***इस संसार का जैसा स्वरूप शास्त्रों में वर्णन किया गया है और जैसा देखा–सुना जाता है, वैसा तत्वज्ञान होने के पश्चात् नहीं पाया जाता, जिस प्रकार आँख खुलने के पश्चात् स्वप्न का संसार नहीं पाया जाता।***

कल्याण रूपं आनन्द कन्दं

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

किसी साधक को आरती के समय आये शब्द जो मंत्र रूप में जाग्रत हो साधक के अन्तश्चैतना को स्फुरित कर दिया। साधक आहलादित मन उस सद्‌गुरु तत्व में विलीन होकर अपने अन्तरंगता का बयान किया। यद्यपि ऐसे अन्तरंग भाव को शब्द में व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। क्योंकि यह सूक्ष्म वृत्ति में सूक्ष्म शरीर पर घटित होने वाली बात होती है। पुनश्च अस्फुट शब्द का सतही बयान ही साधकों को ऊर्जा प्रदान करने वाला होता है।

आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का जीवन भोगवादी हो गया है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति किसी भी व्यक्ति के लिए आनन्ददायी नहीं होती है क्योंकि भोगवादी प्रवृत्ति व्यक्ति के स्थूल रूप को विकृति आनन्द प्रदान करता है। यह भोगवादिता सीमित इच्छाओं वाले सामान्य व्यक्ति के लिए उपयोगी हो सकती है। उसके जीवन की सोच दृष्टि उथली होती है। लेकिन जीव का मूल स्वरूप और कार्य ऐसा नही है। भोगवादी स्वरूप स्थायी नहीं है। क्योंकि व्यक्ति का जीवन–चक्र परिवर्तनशील होता है। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य शास्त्रोक्त रूप से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। इसमें धर्म और मोक्ष व्यक्ति के आन्तरिक जीवन को प्रभावित करते है। जबकि अर्थ और काम व्यक्ति के बाह्य जीवन में उपयोगी होता है। इसका तात्पर्य है, हमारे मनीषियों ने आन्तरिक और बाह्य दोनों को पुष्ट करने के लिए इसका आविष्कार किया। इनमें अर्थ और काम बाह्य आनन्द प्रदान करने वाला है। जबकि धर्म और मोक्ष आन्तरिक पुष्टि में कल्याणकारी होता है। हम साधक समुदाय सद्‌गुरुदेव भगवान की आरती में कल्याण रूप आनन्दकन्द जब गाते हैं तब ऐसा लगता है जैसे हम किसी बड़े अन्तःश्चेतना में विलीन हो गये हैं। निश्चित रूप से धर्म और मोक्ष तथा अर्थ और काम क्रमशः आन्तरिक और बाह्य को तृप्त करती रहती है। हमारे दादा गुरु और सद्‌गुरु का रूप ऐसा ही है। जिससे साधक दोनों से तृप्त होकर परमानन्द को प्राप्त करता है। अब विचार कर देखा जाये तो आनन्द स्थूल शरीर पर घटित होने वाला उपादान है। यह हमारे आन्तरिक मन अर्थात् प्राणतत्व को कितना प्रभावित करता है। आनन्द वस्तुतः स्थूल शरीर पर घटित होने वाला कारण है। आनन्द में व्यक्ति नाचेगा, झूमेगा या अन्य आंगिक चेष्टाएँ करेगा। जैसे एक गवैया जब गीत गाता है तो आनन्द में उसकी आंगिक चेष्टाएँ स्वतः होती रहती हैं। लेकिन यह आनन्द क्या कल्याणकारी हो सकता है। शायद यह स्थूल शरीर का कल्याण तो कर सकता है। किंतु स्थायी नहीं हो सकता है। क्योंकि जैसे ही गायक गीत समाप्त करता है तो आंगिक चेष्टाएँ बन्द हो जाती हैं। बाद में कहने पर वह कोई चेष्टा नहीं करेगा।

महाभारत के युद्ध में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। वह उपदेश

उसके लिए कल्याणकारी था। शायद अर्जुन के समक्ष युद्ध चुनौती के रूप में था। उस उपदेश को उसने चुनौती के रूप में सुना। यद्यपि कल्याण उससे यह हुआ कि युद्ध में विजयी हुआ। किंतु कुछ दिन बाद शायद अर्जुन के मन में कल्याण रूप की वृत्ति उठी तो भगवान से निवेदन किया प्रभो गीता के उस उपदेश को आप कल्याण के लिए पुनः सुना दें जो मेरे लिए परम कल्याणकारी है। भगवान ने कहा–अर्जुन जब मैं उस उपदेश को सुना रहा था, तब मैं योग युक्त था। अब वह उपदेश करना सम्भव नहीं है। यद्यपि की वह उपदेश कल्याण रूप ही था। जो बाह्य आनन्द को पुष्ट किया। जिससे युद्ध में विजय प्राप्त हुआ। इससे सिद्ध होता है कि कल्याण एवं व्यक्ति के आन्तरिक रूप को प्रभावित करता है। जिससे व्यक्ति धर्म और मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार अर्थ यह निकला कि कल्याण रूप व्यक्ति के प्राण तत्व को प्रभावित करता है। जिससे साधक साधन पक्ष में अग्रसर होता चला जाता है। कल्याणरूप व्यक्ति के आन्तरिक आनन्द को जाग्रत करता है। साधक का आन्तरिक आनन्द अर्थात् प्राण तत्व आनन्द कंद को प्राप्त करता है। साधक का साध्य सिद्ध हो जाता है। साधक अपने असली स्वरूप को जान जाता है। योग दर्शन का सूत्र है– "तदाद्रष्टुस्वरूपोऽवस्थानम्" अर्थात् द्रष्टा (साधक) अपने स्वरूप में स्थित हो जाये।

वैसे आन्तरिक पुष्टि का आधार बाह्य पुष्टि भी आवश्यक जान पड़ता है। क्योंकि अर्थ और काम से बाह्य शरीर की पुष्टि होती है। अर्थ भौतिक सुख का कारण बनता है। काम व्यक्ति के सामाजिक जीवन में सन्तान सुख को प्राप्त करके आनन्दित होता है। क्योंकि शारीरिक स्वस्थता ही आन्तरिक को बल प्रदान करता है। इसी प्रकार योग साधक के दो पक्ष साधन पक्ष और साध्य पक्ष मूल बिन्दु हैं। साधन पक्ष शारीरिक आरोग्यता एवं बल प्रदान करता है। साध्य पक्ष में साधक समाधि लाभ करता है। इसलिए यह सभी साधकों के हितार्थ आवश्यक है कि वह कल्याणरूप को प्राप्त करके परमानन्द रूपी कल्याणकारी मोक्ष को प्राप्त कर ले। जिससे मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध हो।

हमारे सिद्धगुफा सवाई के सम्पर्क में जो भी सामाजिक यत् किञ्चित् भी सद्गुरुदेव भगवान के सम्पर्क में आया स्पर्श सुख प्राप्त किया, उपदेश रूपी वाणी सुना अथवा दर्शन लाभ ही मात्र किया, वह निश्चय ही कल्याण रूप आनन्दकन्द की स्वरूप स्थिति को प्राप्त किया। वह अपने को कृतकृत्य समझा।

✦ *केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके, श्रद्धा और भाव के सहित परमप्रेम से भगवान का निरन्तर चिन्तन करना 'अव्यभिचारिणी' भक्ति है।*

सिद्धयोग पत्रिका हमारी

अमित कुमार मिश्र

हे योगिराज प्रभु रामलाल योगेश्वर हे भगवान,
जन्म दिवस के योग पर्व पर बारम्बार प्रणाम।।
श्री सिद्धयोग पत्रिका हमारी, गुरुवर सम महान।
सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, प्रभु रामलाल भगवान्।।
योगयोगेश्वर रामलाल प्रभु, सिद्धयोग नर तन धारी,
चन्द्रमोहन गुरुदेव हमारे, रामलाल प्रभु अवतारी,
उन्नीस सौ अड़सठ में गुरुवर, सिद्धयोग को विस्तारे
निराकार को साकार रूपक, दे अवनि अवतारे
गुरुदेव की लीला को कोई सका न जान
सत्यम् शिवम्..........
गुरुदेव की वाणी हमारे, तुमरे घर आने लगी,
श्री महाप्रभु जी के स्वरूप की, लीला दर्श दिखाने लगी
श्री गुरुदेव जी के यौगिक, सत्संगों का हुआ आभास
हमारी भी आयेगी बारी, लगने लगी तब मन की आस
श्री गुफा की झाँकी की अजब निराली शान
सत्यम् शिवम्.........
खेल रही थी खुशियाँ, गुफा सिद्ध के आँगन में
पता नहीं पर सोच रहे थे, क्या गुरुवर मन में,
हाय! बिलखता छोड़ गुरुवर, निज श्री धाम गए
जगत पिता के जाते ही, हम सारे अनाथ भए
रो रही थी धरती सारी रोता आसमान
सत्यम् शिवम्.........
श्री गुरुदेव की कृपा से, श्री गुरुवर काज विस्तारा,
दासलाल जी महाराज ने, सिद्धयोग को सम्हारा,
श्री गुरुवर के सम हमको, यह लल्ला लल्ली है कहती

कभी गले से हमको लगाके, प्यार प्यार से है करती
यही आँसू पोछेगी अब, कि जब आँखों में आएँगे
यही रस्ता बतलायेगी, कि जब अंधियारे छाएँगे,
यही लल्ला कह बोलेगी, यही अब थपकी मारेगी
यही गुरुदेव के सम, सबको पुचकारेगी
यही सर्व दु:ख नाशन हारा यही मुक्ति प्रकाम
सत्यम् शिवम्..........
श्री रामनवमी को श्री प्रभु जी, हमारे अवतारे
उसी पर्व से पत्रिका के, सदस्य बनते हम सारे
आओ मिलजुल कर हम, श्री प्रभु जी का काज करें
श्री सिद्धयोग पत्रिका का, तन मन धन से विस्तार करें
हे गुरुवर तेरे चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम
सत्यम् शिवम्..........

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

अर्थ– जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनाग की शय्या पर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभि में कमल है, जो देवताओं के भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं, जो आकाश के सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नील मेघ के समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिनके सम्पूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियों द्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं, जो सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं, जो जन्म–मरणरूप भय का नाश करने वाले हैं, ऐसे लक्ष्मीपति, कमलनेत्र भगवान् श्रीविष्णु को मैं (सिरसे) प्रणाम करता हूँ।

एक तू ही तो है जिसका है आसरा

त्रिजुगी नरायन मिश्र

एक तू ही तो है जिसका है आसरा,
प्रभू जी तेरा सहारा सदा चाहिए।

तू हृदय में बसा हाल सब जानता
कितना असमर्थ हूँ कितना असहाय हूँ।
एक तेरी दया का ही आधार है,
बस उसी के सहारे कटी जिन्दगी।
नित्य वर्षा कृपाओं की तू कर रहा,
बूँद दो चार केवल हमें चाहिए।

एक तू ही तो है जिसका है आसरा,
प्रभू जी तेरा सहारा सदा चाहिए।

तूने पैदा किया पाला पोसा हमें,
अपने पैरों पे चलना सिखाया हमें।
यहाँ फूल भी हैं और काँटे भी हैं,
लड़खड़ाया जहाँ तूने थामा हमें।
चाहें सुख में रहें चाहें दु:ख में रहें,
याद तेरी रहे बस यही चाहिए।

एक तू ही तो है जिसका है आसरा,
प्रभू जी तेरा सहारा सदा चाहिए।

इतनी सामर्थ्य अब कहाँ है प्रभू,
पार संसार सागर को जो कर सकूँ।
मैं भटकता रहा जन्म से ही यहाँ,
आज तक तो किनारा न मैं पा सका,
इस जीवन की डोरी तेरे हाथ में,
पार जो तू करे पार पा जायेगें।

एक तू ही तो है जिसका है आसरा,
प्रभू जी तेरा सहारा सदा चाहिए।

श्री दीक्षित जी की योग दीक्षा

केशव देव उपाध्याय

'परम करुणा निकेतन एवं करुणा सागर योगेश्वर श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से एक अलौकिक सत्य गुरुवर कृपावर्णन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस कृपा चरित्र के पठन, चिन्तन एवं वर्णन से भाई बहनों में आराध्यदेव के चरण कमलों में अनन्य श्रद्धाभाव का विकास होगा, ऐसी अपनी आशा है। सन् उन्नीस सौ तिरेपन में इलाहाबाद में माघ मेला (कुम्भ मेला) का आयोजन था। चूंकि कुम्भ मेला में प्रथम प्रधानमंत्री भारत सरकार श्री जवाहर लाल नेहरू जी के स्नानादि का कार्यक्रम था, अतः इस कुम्भ मेला में व्यापक एवं बहुत बेहतर प्रबन्ध किया गया था। हमारे धार्मिक शास्त्रों में ऐसी मान्यता है।

''माघ मकर जब रवि गति होई, तीरथ पतिहि आव सब कोई''

अर्थात् कुम्भ मेला में स्नान करने पर सभी तीर्थों की यात्राओं ... स्नान का फल मिलता है। यही कारण है कि विश्व के सभी धार्मिक तीर्थ स्थलों में प्रयाग (इलाहाबाद) माघ मेला का अग्रणी स्थान है। शायद इसी रहस्यों को मनोगत करके लाखों लोग प्रतिवर्ष कुम्भ मेला में स्नान कर महान पुण्य के भागी बनते हैं। इटावा जनपद में अजीतमल एक बड़ा कस्बा है। इसी के करीब एक गाँव है जिसका नाम अमावता है। इस गाँव में राजपूतों (ठाकुरों) की आबादी है। पहिले से एक परिवार इस गाँव में ब्राह्मणों का था। राजपूत बाहुल्य गाँव में राजपूतों का दब-दबा है। इस गाँव के निवासी श्री बिहारी लाल दीक्षित एवं श्री काशी दत्त दीक्षित दो भाई थे। छोटे भाई श्री काशी दत्त दीक्षित जी ने ब्रह्मचारी रहकर रामानुज मार्ग में साधना की। उनकी साधना काफी अच्छी थी एवं इस सम्प्रदाय में बाबा जी के नाम से जाने जाते थे। श्री रामानुज मार्ग के कानपुर मण्डल के वे व्यवस्था का कार्य देखते थे। इस पथ में साधना करते हुये उनका शरीर परलोक वासी हो गया। बड़े भाई श्री लाल बिहारी दीक्षित जी डाक-तार विभाग में कार्य करते थे। इनके एक मात्र संतान श्री गणेश दत्त दीक्षित जी हैं, जो आज भी लगभग बहत्तर साल की अवस्था में पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

सन् उन्नीस सौ तिरेपन में माघ शीर्ष महिना में प्रयाग कुम्भ मेला में श्री रामानुज सम्प्रदाय का साधना कैम्प लगा हुआ था। इसके मुख्य व्यवस्थापक श्री काशी दत्त दीक्षित जी थे। उन्होंने अपने बड़े भाई साहब श्री लाल बिहारी दीक्षित जी को जो पोस्ट ऑफिस में कार्यरत थे, पत्र लिखा कि भाई जी, गाँव के लोग कुम्भ मेला में आ रहे हों, तो उन्हें अमुक दिनांक को यात्रा करने की सलाह देवें तथा उन लोगों के साथ आदरणीय भाभी जी एवं गणेश दत्त को भी बैठा देवें तथा इसकी सूचना हमें पत्र द्वारा या दूरभाष द्वारा अग्रिम देने का कष्ट करें। मैं उन लोगों को (भाभी जी एवं गणेश दत्त को) प्रयाग स्टेशन से अपनी साधना कैम्प में बुलवा लूंगा।

तथा फिर उनके गाँव भेजने का प्रबन्ध स्वयं ही कर दूंगा।

श्री लाल बिहारी दीक्षित ने उनकी बतायी तिथि को अपनी पत्नी एवं पुत्र गणेश दत्त को कुम्भ मेला जाने वाले तीर्थ यात्रियों के साथ रेलगाड़ी पर बैठा दिया। साथ ही अपने अनुज भ्राता काशी दत्त जी को माघ मेला कुम्भ में अग्रिम सूचना दे दी। ब्रह्मचारी श्री काशीदत्त जी ने अपने आश्रम के कर्मचारियों को प्रयाग रेलवे स्टेशन भेजकर उन्हें अपने कैम्प साधना आश्रम पर बुलवा लिया। आने वाले दिन एवं उसके बाद एक दिन और उन लोगों ने साधना कैम्प में आराम किया। अगले दिन कुम्भ मुख्य स्नान यानी माघी आमवस्या का दिन था एवं आदरणीय भाई काशीदत्त जी ने अपने पथ के साधकों के साथ अपनी आदरणीय भाभी जी को एवं श्री गणेश दत्त दीक्षित जी को त्रिवेणी स्नान करने के लिए तथा शाही स्नान करने वाले तीर्थ यात्रियों की शोभायात्रा के दर्शनार्थ लगा दिया। भीड़ करीब दसों लाख की थी। आधा से ज्यादा प्रशासन के लोग प्रधानमंत्री की स्नान सुरक्षा व्यवस्था में व्यस्त थे एवं आधे प्रशासन के लोग पूरे लोगों की जो कुम्भ मेला में तीर्थ यात्रा की नीयत से स्नान करने आये थे, में लगे थे। स्नान का मुहूर्त प्रातः साढ़े सात बजे था। स्नानार्थियों की भीड़ अनियमित हो गई एवं इसी बीच लकड़ी से बनाये गये दो पुल (ब्रिज) तीर्थ यात्रियों की भीड़ की वजह से टूट गये, भगदड़ मच गई एवं इसी दौरान श्री गणेश दत्त का साथ, अपने साथ चलने वाले तीर्थ यात्रियों से छूट गया।

उस समय गणेश दत्त की अवस्था मात्र ग्यारह साल की थी एवं ये लोअर क्लास पाँच या छः के ही विद्यार्थी थे। संयोग ऐसा बना कि श्री गणेशदत्त अकेले होने पर घबराकर अपने साथ चलने वालों को ढूँढ़ने लगे। ग्यारह वर्ष के बालक की औकात ही क्या? वे भीड़ में गिर पड़े एवं उनके शरीर से होकर तीर्थयात्री जाने लगे। भाई दीक्षित जी ने बतलाया कि वे जब जमीन पर गिर गये तो एक घुड़सवार सिपाही ने उन्हें बचाने की नीयत से उनके गिरे शरीर के चारों तरफ घोड़े से चक्कर लगाना आरम्भ किया ताकि ये बच जाये, परंतु वह मात्र दो ही चक्कर लगाया होगा कि भीड़ ज्यादा बढ़ गई एवं तीर्थ यात्री इनके ऊपर से होकर जाने लगे एवं श्री गणेश दत्त जी बेहोश हो गये। उसके बाद की घटनाओं का उन्हें स्मरण नहीं रहा। जब उन्हें होश आया तो सायंकाल के चार बज रहे थे। यानि इनको बेहोश हुये करीब आठ घंटे का समय हो गया था। इन्हें जब होश आया तो इन्होंने अपने आप को प्रयाग कुम्भ तीर्थ स्थल के त्रिवेणी घाट के किनारे पाया एवं उनका सिर एक ब्रह्मचारी वेषधारी महात्मा जी जंघा पर रखा था एवं महात्मा अपने धोती के भीगे हुए कोने से इनके चेहरे पर पानी के छींटे डाल रहे थे तथा अपनी चादर से दबा रहे थे एवं उस समय मात्र चार या पांच प्राणी संगम में स्नान कर रहे थे।

होश आने पर उस महात्मा ने जिनके जंघा पर उनका सिर रखा हुआ था, मधुर मुस्कान के साथ कहा, ''लल्ला! तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहां से आये हो?'' भाई साहब

ने उत्तर दिया, ''ताऊ जी! हमारा नाम गणेश दत्त दीक्षित है तथा हम इटावा जनपद के 'अमावता' गाँव के निवासी है।'' उसके बाद श्री दीक्षित भाई साहब ने प्रश्न किया, ''ताऊ जी आप कौन हैं?'' उस ब्रह्मचारी महात्मा जी ने उत्तर दिया, ''लल्ला! मैं तुम्हारा ताऊ जी ही हूँ।'' उसके बाद बाबा जी ने कहा, ''चलो! मैं तुम्हारे ताऊ जी के कुम्भ मेला साधना शिविर मे ही छोड़ दूं, जहाँ तुम्हारे परिवार के लोग हैं।''

श्री ब्रह्मचारी जी की बात सुनकर श्री गणेश दत्त दीक्षित जी उठ कर खड़े हो गये एवं आगे–आगे ब्रह्मचारी जी पीछे–पीछे श्री गणेश दत्त दीक्षित चल दिये। थोड़ी दूर के बाद भाई श्री गणेश दत्त दीक्षित ने कहा कि ताऊ जी, ''अब हमसे नहीं चला जा रहा है।'' उनके ताऊ जी ने कहा कि आओ तुम हमारे कन्धे पर बैठ जाओ। इतना कहकर उस ब्रह्मचारी महात्मा जी ने उन्हें अपने कंधे पर बैठा लिया एवं कन्धे पर बैठा कर, रामानुज सम्प्रदाय के माघ मेला कैम्प के साधन शिविर के मुख्य द्वार पर छोड़ दिया एवं कहा कि इस कैम्प में चले जाओ, इसी में तुम्हारे परिवार के लोग हैं और फिर चल दिये।

श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई धाम से संबंधित हमारे गुरुभाई बहन अब अवश्य ही समझ गये होंगे कि ताऊ जी बनकर लल्ला कहने वाले ये अखण्ड ब्रह्मचारी महात्मा हमारे आप के गुरुदेव ही हैं। चार दिन बाद श्री काशी दत्त जी ने, उन लोगों को जो गाँव से आये थे, इलाहाबाद जक्शन से इटावा के लिये ट्रेन पर बैठाया। ट्रेन में बहुत भीड़ थी। सभी लोग ट्रेन में चढ़ गये परंतु श्री गणेश दत्त जी प्लेट फार्म पर छूट गये एवं ट्रेन ने स्पीड पकड़ ली एवं पूरा प्लेटफार्म पार कर गई। बालक गणेश दत्त ने अपने संगम तट पर मिले ताऊ जी को याद किया और ताऊ जी उसी क्षण आ गये। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से गणेश दत्त की बाई बांह का कुल्हा पकड़ा एवं आकाश मार्ग से होते हुये, उन्हें उनके परिवार वालों के ट्रेन–डब्बे में डाल दिया।

श्री दीक्षित जब अपनी माता जी एवं गाँव के अन्य लोगों के साथ अपने ग्राम अमावता पहुँचे तो इससे पूर्व ही इनके पिता जी को आराध्यदेव जी का एक पत्र मिल गया था। उस पत्र में उनके पिता जी को लिखा गया था कि लल्ला, तुमने इतने अल्पायु बच्चे को इस अपार भीड़ वाले कुम्भ मेले में भेजकर अच्छा नहीं किया। यह तुम्हारा इकलौता पुत्र है। इसकी देखभाल बहुत सोच विचार कर किया करो, उसी पत्र में गणेशदत्त के लिये भी लिखा था। लल्ला गणेशदत्त खूब परिश्रम एवं मन लगाकर पढ़ाई करो। तुमको जिस सामान की जरूरत हो हमें पत्र लिख देना, हम तुम्हें भेज देंगे।

उसके दो महिने बाद होली का त्योहार था। त्यौहार के चार दिन पूर्व उनके पिता जी के नाम एक पार्सल डिब्बा आया, जिसमें पता लिखा था, ''गणेश दत्त सुपुत्र लाल बिहारी दीक्षित।'' पार्सल के अन्दर आराध्यदेव जी ने श्री गणेशदत्त के लिये पूरा कपड़े का सेट भेजा था। उसके बाद आराध्यदेव जी प्रत्येक उत्सवों पर इनको कुछ न कुछ अवश्य ही उपहार भेजा

करते थे। भाई श्री गणेश दत्त दीक्षित जी भी अपने ताऊ जी के आज्ञा पालनार्थ उनके पत्र का उत्तर अवश्य ही भेजते थे। एक अपरिचित व्यक्ति द्वारा अपने इकलौते पुत्र से इस प्रकार का गहन प्रेम देखकर गणेश दत्त जी के पिता जी को शंका हुई एवं उन्होंने गुरुदेव के नाम एक खराब भाव का पत्र भेजा। पत्र में लिखा था कि हमारे इकलौते बेटे से आप का स्वार्थ भरा बनावटी प्रेम हमें बहुत खटकता है। हमें तो ऐसा लगता है कि आप हमारे लड़के को अपने मायाजाल में फँसाना चाहते हैं। आप कौन हैं और आप से हमारे बच्चे का क्या रिश्ता है। लौटती डाक से भेजिये।

आराध्यदेव के पत्र का उत्तर श्री लाल बिहारी दीक्षित जी को तीसरे दिन ही मिल गया। आराध्यदेव जी ने लिखा था,लल्ला! हम योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के योग साधक शिष्य हैं एवं उनकी गुफा जो एत्मादपुर तहसील के पास सवाई गांव में है, रहते हैं। योग सा॰ ा करते एवं कराते हैं। तुम्हारे पुत्र से हमारा प्रेम निःस्वार्थ है। तुम इस योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री ।सद्ध गुफा पर आकर स्वयं इसकी सच्चाई जान सकते हो। आराध्यदेव जी का पत्र पाने के बाद श्री लाल बिहारी दीक्षित जी का मन शांत हो गया। आराध्यदेव जी ने इसी पत्र में भाई दीक्षित जी को लिखा था कि लल्ला, किसी सामान की जरूरत हो तो हमारे पास निःसंकोच पत्र लिखा करो।

श्री गणेश दत्त दीक्षित जी ने पत्र लिखा कि ताऊ जी हमें एक टेबल घड़ी चाहिये। आराध्यदेव जी ने आशीर्वादात्मक पत्र लिखा, जिसमें लिखा था, "लल्ला इस समय हम कलकत्ता के योग प्रचार कार्यक्रम में जा रहे हैं एवं वहां से एक बहुत बढ़िया टेबल घड़ी तुम्हें भेजेंगे। कलकत्ता से आराध्यदेव जी ने उस समय की सबसे मशहूर टेबल घड़ी "जाज" भेजी थी, जो आज भी श्री गणेश दत्त दीक्षित जी के पास है। दीक्षित जी ने जब इण्टरमीडिएट पास कर लिया तो श्री गुरुदेव भगवान को पत्र लिखा, "ताऊ जी हमने इण्टर पास कर लिया है, अब हमारी नौकरी लगवा दीजिये।" श्री गुरुदेव जी ने जवाब दिया, "लल्ला! अमावता से सवाई आश्रम आने का रास्ता इस–इस प्रकार है। तुम अपनी सुविधानुसार आ जाओ।

श्री गणेश दत्त दीक्षित जी, अपने गाँव से बस, ट्रेन, रिक्शा से होते हुये मितावली पहुँच गये। वहां से पूछकर सवाई गांव के पास आ गये। सायंकाल का समय था करीब सात बज रहे थे। सवाई में पहुँचने के बाद जब इन्होंने गुफा का पता पूछा तो एक आदमी ने बतलाया कि इस समय जो शंख एवं घंटा बज रहा है, वह सवाई आश्रम पर होने वाली आरती का ही है। आप इसी ध्वनि के सहारे सवाई धाम पहुँच जाओगे। श्री गणेशदत्त दीक्षित आश्रम पहुँच गये एवं उस समय आरती हो रही थी। आरती में ये पीछे जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। आरती जब समाप्त हो गई तो उन्होंने अपने पास खड़े आदमी से प्रश्न किया, "इसमें चन्द्रमोहन कौन है?" उस आदमी ने कहा कि जो आरती कर रहे हैं वही हम लोगों के गुरुजी, योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी हैं। आरती के बाद उपस्थित सभी भाई–बहनों में आराध्यदेव जी का चरण

स्पर्श कर प्रणाम निवेदित किया।

जब भाई दीक्षित जी ने प्रभु जी (श्री गुरुदेव भगवान) को प्रणाम किया, तो श्री मुख ने कहा, ''लल्ला गणेश दत्त! तुम आ गये, बहुत अच्छा किया।'' रात्रि में गुरुदेव भगवान ने अपने भोजनालय में अपने साथ उन्हें भोजन कराया। गर्मियों के दिन थे। बाहर ही अपनी चारपाई डलवाई एवं उसी के बगल में आदरणीय भाई श्री गणेशदत्त जी के लिये विश्राम का प्रबन्ध करवाया। प्रातः काल करीब सवा पाँच बजे श्री दीक्षित जी सोकर उठे, तो श्री आराध्यदेव जी ने कहा कि लल्ला! अब तो शौच करने चलोगे। उसके बाद श्री गुरुदेव भगवान ने आदरणीय भाई सूरज जी से कमण्डल मंगवाया एवं श्री ताऊ जी एवं भतीजे दोनों महिला निवास के पीछे की तरफ करीब दो फलांग दूर शौच करने निकल गये। श्री गुरुदेव जी महाराज ने भाई गणेशदत्त जी से कहा कि लल्ला तुम यहीं बैठ जाओ मैं अभी थोड़ी दूर और जाऊंगा। श्री गणेश दत्त जी वहीं बैठ गये एवं आराध्यदेव जी एक खेत की करीब डेढ़ फीट ऊँची मेड़ पार कर दूसरे तरफ शौच करने लगे। जब आराध्यदेव जी शौच करने बैठ गये तो, उसके बाद श्री दीक्षित जी शौच करने के लिये बैठे। शौच करने के बाद गणेशदत्त जी जब खड़े हुये तो उनको गुरुदेव भगवान दिखलाई नहीं दिये। जाने का रास्ता एक ही था, अतः सोचते रहे कि ताऊ जी किधर गये। करीब आधे घंटे तक इन्होंने इंतजार किया एवं उसके बाद आश्रम पर आ गये। एक आश्रमवासी ने इन्हें पानी देकर हाथ एवं बर्तन (कमण्डल) साफ कराया।

इसके बाद गणेश दत्त जी ने भाई सूरज जी से पूछा कि ताऊ जी कहां हैं? आदरणीय भाई सूरज जी ने बतलाया कि गुरुदेव भगवान तो प्रातः चार बजे से ही अपने भवन में समाधि में बैठे हैं। श्री सूरज भाई की ये बात सुनकर श्री दीक्षित जी बोले की आप असत्य बोल रहे हैं। श्री सूरज भाई ने डांट कर कहा कि इसमें तुम्हें क्या असत्य लग रहा है? श्री गुरुदेव जी महाराज हमारे सामने ही चार बजे समाधि में बैठे हैं। श्री दीक्षित जी ने कहा कि ताऊ जी हमारे साथ पाँच बजे शौच करने गये थे, तो चार बजे से कैसे बैठे हैं।

वाद–विवाद लड़ाई में बदलता, इसके पूर्व ही आराध्यदेव जी ने अपनी गगन भेदी गम्भीर वाणी में कहा, ''अरे लल्ला सूरज! गणेशदत्त ठीक कह रहा है।'' आराध्यदेव की वाणी सुनकर आदरणीय भाई सूरज जी, अनमनस्क मन से श्री गुरुदेव भगवान की बातें स्वीकारते हुये, भाई गणेशदत्त जी से धीरे से बोले, क्या बतलाये गणेशदत्त, श्री गुरुदेव भी तुम्हारा ही पक्षपात कर रहे हैं। इसके बाद कुछ दिनों तक श्री गणेश दत्त दीक्षित जी ने आराध्यदेव की करुणा कृपा की छाया में सवाई धाम पर ही निवास किया। इसी बीच श्री गुरुपूर्णिमा का पर्व पड़ा। पर्व वाले दिन श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला गणेश! अब तक तो तुम पारिवारिक पदवी से दीक्षित थे, और आज मैं तुम्हें सही अर्थो से दीक्षित करता हूँ। आराध्यदेव जी ने दीक्षा के सामान का प्रबन्ध खुद किया एवं श्री गणेशदत्त जी को विधिवत योग दीक्षा प्रदान कर दी।

दीक्षा के बाद श्री गणेशदत्त जी डेढ़–दो महिने आराध्यदेव जी के साथ रहकर योग

साधना करते रहे। श्री दीक्षित जी ने अहेतुकी कृपा सागर श्री आराध्यदेव जी के साथ कई यात्रायें भी की। इस बीच श्री दीक्षित जी ने श्री गुरुदेव भगवान से कई बार प्रार्थना की कि मैं ब्रह्मचारी रहकर योग साधना करना चाहता हूँ। श्री गुरुदेव भगवान ने एक दिन एकान्त में उनसे कहा कि लल्ला! अभी तुम्हारे गृहस्थी के संस्कार काफी अवशेष हैं, अतः तुम अपने घर अमावता चले जाओ। घर पर रहकर खूब मन लगाकर आरती–पूजन करना, पढ़ाई करना तथा अपने माता–पिता की आज्ञाओं का पालन करना।

श्री दीक्षित जी, आराध्यदेव जी की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने घर आ गये। घर पर रहते हुये इन्होंने गुरुदेव की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया। समय बीतता गया एवं इसी बीच इनकी शादी भी तय हो गई। शादी की बात इन्होंने आराध्यदेव जी से निवेदित किया तो आराध्यदेव जी ने आशीर्वादात्मक पत्र दिया। "लल्ला! खूब प्रेम और उत्साह के साथ शादी करो, मैं किसी न किसी रूप में अवश्य ही शादी में उपस्थित रहूंगा। शादी खूब आनन्द के साथ सकुशल सम्पन्न हो गई। संस्कार वशात् कुछ वर्षों पश्चात् इनकी पत्नी का शरीर शांत हो गया। पहली पत्नी के निधन के बाद, इन्होंने आराध्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर, दूसरी शादी की, जो आज भी जीवित हैं। इनकी इस धर्म परायण अर्धांगिनी से कई सन्ताने है।

आज आदरणीय भाई श्री गणेश दत्त जी का भरा–पूरा परिवार अहेतुकी कृपासागर श्री गुरुदेव भगवान की कृपा से सुखमय व सानन्द जीवन यापन कर रहा है। धन्य है ऐसे भतीजे एवं धन्य हैं, कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले उनके सदैव वन्दनीय ताऊ जी!

संयम के बिना मनुष्य जन्म व्यर्थ है।

संजमु विणु णरभव सयलु सुण्ण।
संजुमुविणु दुग्गई जिय उपण्ण।।
संजमु विणु घडिय म इत्थ जाऊ।
संजमु विणु विहलिय अत्थि आउ।।

बिना संयम के धारण किये हुए मनुष्य भव प्राप्त करना ही व्यर्थ है। कारण जब तक यह जीव संयम को नहीं पालेगा तब तक उसकी दुर्गति ही होगी। इसीलिए हर एक प्राणी का कर्तव्य है कि वह बिना संयम के एक घड़ी भी व्यर्थ नहीं जाने देवे, क्योंकि बिना संयम से यह आयु भी व्यर्थ है।

श्री गुरुतत्व

डा. विजय सिंह

ॐ नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानन्द मूर्तये।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः।।

योग के मूल प्रणेता जगद्गुरु शिव हैं। सिद्धयोग का प्राकट्य भगवान सदाशिव से हुआ है। एक युगान्तर से चली आ रही परम्परा है। करुणामूर्ति सद्गुरु का रूप और नाम, जो और जैसा भी हो, परन्तु गुरुतत्व एक ही है, जिसको जानना दुर्लभ है। श्रीगुरु को विरला ही उनकी कृपा से जानकर स्वयं गुरुतत्व में लीन हो जाता है–

श्री गुरुं परमं तत्त्वं तिष्ठन्तं चक्षुरग्रतः।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्यमिवोदितम्।।

अर्थात्– जन्मान्ध को सूर्य का प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता उसी प्रकार मन्द पुरुषार्थ, मलीन संस्कार युक्त जीवों को सद्गुरु सानिध्य प्राप्त होने पर भी उनकी महिमा का बोध नहीं होता। अविवेकी शिष्य आध्यात्म दृष्टि से अन्धे होते हैं।

यदि ऐसे अविवेकी शिष्य भी बराबर सद्गुरु सेवा में परायण रहें तो उन्हें भी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाया करती है।

हमारे सद्गुरु स्वयं परशिव हैं। अतः उनको कोटिशः नमन।

जगद्गुरु नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणां च योगिन्द्र गुरुणां गुरुवे नमः।।

शिवसूत्र में बताया गया है कि सिद्धयोग का प्राकट्य परशिव के तेज एवं सती के शक्ति से हुआ है। अतः महाशक्ति कुण्डलिनी के प्रसाद बिना परम पद दुर्लभ है। इस महाशक्ति की स्फुरणा सद्गुरु द्वारा ही जीव में सम्भव है।

''**महायोग विज्ञान**'' नामक ग्रंथ में सिद्धयोग के परम्परा का प्रारम्भ आदि शिव से हुआ बताया गया है। उन्होंने यह ज्ञान आदि नारायण भगवान को दिया। स्वयं नारायण ने योगी रूप धारण कर सभी ऋषियों को सिद्धयोग सिखलाया। आगे महामुनि सनत्कुमार ने इस दिव्य योग को संवर्त को दिया। योगीन्द्र सनन्दन ने महर्षि पुलह को ज्ञान कराया। पुलह ने ऋषि गौतम को ज्ञान दिया। महात्मा अंगीरस ने ऋषि भरद्वाज को तथा इस गुरु परम्परा से अनेक योगी जैजिषव्य, आरव्य, पंच शिखाचार्य आदि को प्राप्त हुआ।

निश्चित रूप से हमें जानना चाहिए कि सिद्धयोग कुण्डलिनी–योग है। षट–चक्रों का बेधन का प्रबन्धन विनीत कर्मठ शिष्य में सद्गुरु अपनी कृपा शक्ति (शक्ति–पात) से किया

करते है। इष्ट, मंत्र एवं श्रीगुरु एक ही है अतः मंत्र का अवगाहन ही शिष्य का प्राथमिक कर्म साधना है।

यथा देवस्तथा मंत्रो यथा मन्त्रस्तथा गुरुः।
देवमन्त्रगुरुणाञ्च पूजया सदृशं फलम्।।

अतः सेवाभाव से श्री गुरु, मंत्र एवं ईष्ट की पूजा–उपासना से समान फल प्राप्त होता है।

तन्त्र ग्रन्थों में भगवान सदाशिव माता पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं–

शिवरूपं समास्थाय पूजां गृह्णामि पार्वती।
गुरु रूपं समादाय भवपाशान्निकृन्तये।।
सिद्धान्तसारवेत्ताहं बीजोऽहमिति बोधकृत्।
अविच्छिन्नः सदा इष्टहृदयो गुरुरुच्यते।।

भाव यह है कि– शिवरूप धारण कर मैं ही सब पूजाओं को ग्रहण करता हूँ तथा गुरुरूप धारण कर मैं ही भवपाश शिष्यों का काटता हूँ। सभी के हृदय में मैं ही द्रष्टारूप निवास करता हूँ। मैं ही जगत का बीज हूँ। श्री गुरु रूप में मैं नित्य हूँ और ज्ञान–प्रदाता हूँ।

हमें मंत्र, साधना, ध्यान द्वारा सद्गुरु–तत्व रहस्य का क्रमिक ज्ञान उद्घाटित होता है। अन्तर में चिति का प्रकाश व ब्रह्मनाद पैदा करने वाले परम प्रभु मानव देह में प्रकट साक्षात् महेश्वर भूतभावन शिवजी ही है। ज्यों–ज्यों हमारे मलीन संस्कार मंत्र तेज में भस्मी भूत होंगे परिणाम स्वरूप सत्व का प्रकाश अन्तःकरण में विद्यमान अंधकार को नष्ट कर चिदाकाश में व्याप्त सद्गुरु तेज का दर्शन करा देगा। अहं का परिष्करण आवश्यक है अन्यथा साधना अन्तरायों से घिर जायेगी।

यहाँ टाट वाले बाबा की कथा को स्मरण में ले लेना समीचीन होगा।

रघुनन्दन प्रसाद नाम के एक व्यक्ति ने बनारस में रहकर तीव्रतम तपश्चर्या किया। फलस्वरूप श्री हरिश्चन्द्र घाट पर आकाशवाणी हुई कि तुम सवाई जाओ। अटकते–भटकते वे ग्राम सवाई से सिद्धगुफा पर पहुँचे। उस समय हमारे श्री सद्गुरुदेव हरिद्वार चण्डी पर्वत पर एकान्तवास में थे। वे अकस्मात् धाम पर पहुँच कर रघुनन्दन प्रसाद को योग–दीक्षा प्रदान कर उनको तीव्रतर स्वाध्याय के तरीके बताकर पुनः पहाड़ पर चले गये। इधर श्री गुरु आदेशानुसार प्रातः तीन घण्टे गुफा में बैठकर जाप करते पुनः बाहर वृक्ष के नीचे तीन घण्टे ध्यानाभ्यास करते तथा तीन घण्टे कदम्ब के पेड़ के नीचे घूम–घूम कर जप करते थे। आगे चलकर श्री गुरुदेव जी के आदेश से एक समय भोजन करके उपरोक्त जाप–ध्यान का क्रम अनुष्ठान विधि से करते रहे। कुछ दिन केवल लस्सी पीकर तथा कुछ समय बेल पत्र खाकर वे साधना में जुटे रहे। श्री सद्गुरु कृपा से श्री रघुनन्दन प्रसाद की ध्यान स्थित उत्तरोत्तर उत्कर्ष

की ओर अग्रसर होता रहा। दिव्य दृष्टि सम्पन्नता कायिक मलों के जल जाने से प्राप्त होता है। रघुनन्दन जी को भूत–भविष्यत का ज्ञान होने लगा। एकान्तवास से लौटकर श्री गुरुदेव जी ने देखा रघुनन्दन योग की उच्चतम स्थिति की ओर बढ़ रहा है। परंतु शक्तियों के खेल में इसकी बुद्धि उलझ रही है। अतः हितोपदेश देते हुए श्री सद्‌गुरु ने कहा– रघुनन्दन! सांसारिक लोगों के झमेले में हम लोगों को नहीं पड़ना चाहिए। योगी को समुद्र पीकर भी उसके होंठ सूखे ही दिखलाई देना चाहिए। रघुनन्दन मान–सम्मान के झमेले में पड़ चुके थे अतः उन्हें श्री गुरुदेव की चेतावनी अच्छी नहीं लगी।

हमारे श्री गुरुदेव ने गोप्य रह कर जगत में लाखों जीवों का उद्धार किया। अतः वे रघुनन्दन को अन्तरायों से बाहर निकालने के लिए सूक्ष्म प्रक्रिया अपनाये।

एक दिन जब श्री गुरुदेव जी सवाई ग्राम के किसी भक्त के आमन्त्रण पर गये हुए थे। गुफा पर एक महात्मा जटाजूट धारी, भस्म लगाये, मात्र कौपीन धारण किये हुए थे आये। उस समय रघुनन्दन जी ही आश्रम पर थे। महात्मा ने रघुनन्दन प्रसाद से कहा– कहो, महाराज जी कहाँ गये हैं? रघुनन्दन प्रसाद ने उत्तर दिया, 'महाराज जी गाँव में गये हैं, अभी आने वाले हैं। आते ही होंगे। महात्मा ने कहा, 'नहीं उनका शाम को पाँच बजे आने का विचार है। तुम जाकर उन्हें बुला लाओ कहना एक महात्मा दर्शनार्थ आये हैं। रघुनन्दन जी ने द्रुत गति से श्री सद्‌गुरु के पास पहुँच सारा वृतान्त बताकर पूछा– आप तो नित्य इसी समय लौट आया करते थे क्या आज पाँच बजे लौटने का विचार था? श्री प्रभुजी ने कहा आज ऐसा ही विचार बन रहा था।

ज्योंही श्री सद्‌गुरु भगवान आश्रम के नजदीक पहुँचे त्योंही उस महात्मा ने रास्ते में ही लेटकर दण्डवत प्रणाम किया। श्री प्रभुजी ने महात्मा को उठाकर कण्ठ से लगा लिया और साथ गुफा पर ले आये।

गुफा पर लौटकर आने के बाद महात्मा ने रघुनन्दन प्रसाद से कहा– 'क्यों, तुम बनारस से आये हो, तुम्हें भगवान विश्वनाथ जी ने यहाँ भेजा है? रघुनन्दन प्रसाद ने आश्चर्य–चकित होकर कहा– 'हाँ महात्मन्! हम यहाँ भगवान विश्वनाथ जी की आज्ञा से ही आया हूँ।' उस महात्मा ने रघुनन्दन प्रसाद से कहा–'यह धाम भगवान विश्वनाथ का ही है और कुर्ता–धोती पहने सामान्य मानव के रूप में छिपे हमारे सद्‌गुरु देव की ओर इशारा करते हुए बोले– 'यही भगवान विश्वनाथ हैं। दण्डवत प्रणाम कर। रघुनन्दन प्रसाद आज्ञा का पालन किये। पुनः रघुनन्दन प्रसाद से उसी समय सात दण्डवती परिक्रमा गुफा की लगवाई। महात्मा ने उनको उपदेश करते हुए कहा– तुम सदैव श्री सद्‌गुरु की आज्ञा पालन करना कहीं मत भटकना क्रोध व अहंकार नहीं करना। यहाँ रहने से ही तुम्हें पूर्णता मिलेगी।

कुलार्णव तंत्र में वर्णित कथन हमारे सद्‌गुरु देव के ही रूप माधुर्य, भक्तवत्सलता, कृपालुता, शुचिता, मनोरम्यता एवं दिव्यानन्द की याद दिलाता है।

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेशो मनोहरः।

सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वावयव शोभितः।।

भाव– श्री सद्गुरु शुद्धवेश वाले हैं, उनकी मनोहर मुस्कान उनके अन्दर के आनन्द को बाहर जीवों के हेतु प्रवाहमान अभय दायक है। वे दिव्यानन्द से आभासित हैं। वे साधकों के कुण्डलनी को जाग्रत करते हैं। उनमें ब्रह्मानन्द की छटा, मस्ती तथा अहैतुक प्रेम का झरना हर पल झरता रहता है।

ऐसे कृपालु सद्गुरु के स्मरण से सभी साधन, सभी सुख की प्राप्ति हो जाती है। योग–दीक्षा रूपी मणि–मंत्र सभी को मिला हुआ है। श्री गुरुदेव के आदेश का यत्किंचित भी जो पालन सदाचार पूर्वक करता है, उसे अहर्निश उनकी कृपा का बोध होता रहता है।

गङ्गा के पवित्र प्रवाह को रोकना उचित नहीं

कहते हैं कि स्वर्गलोक में देवगण यह गीत गाते हैं कि वे व्यक्ति धन्य हैं जो भारतभूमि में जन्म लेते हैं–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

(वि.पु. 2/3/24)

यह गीत देवतागण क्यों गाते हैं? क्या यह भारत में जन्म लेने वालों की विशेषता है या इस देश की? नहीं, यह विशेषता तो भारतभूमि की है, जिस भूमि पर पतितपावनी कलिमलहारिणी, जगदुद्धारिणी माँ सुरसरि गंगा का सानिध्य सब को सुलभता से प्राप्त होता है।

माँ गंगा का यह सानिध्य इतना चमत्कारी है कि दर्शन–स्पर्श, स्नान–पान और कीर्तन मात्र से जन्म–मरण के बन्धन से तो सदा–सर्वदा के लिये मनुष्य को मुक्त कर ही देता है, उसकी सात पीढ़ियों को भी पवित्र कर तार देता है।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अपगाढा च पीता च पुनाति सप्तमं कुलम्।।

(महाभारत)

'गंगा अपना नाम उच्चारण करने वाले के पापों का नाश करती हैं, दर्शन करने वालों का कल्याण करती हैं तथा स्नान–पान करने वालों की सात पीढ़ियों तक को पवित्र करती हैं।'

'अँगरखा' के भीतर 'ईश्वर' के सिवाय कुछ नहीं है।

दृष्टिकेतु सिंह पुन्डीर, अलीगढ़

मंसूर अल्हल्लज, सूफी रहस्यवादी जिसने 'ईश्वर' से मिलाप किया था, अपने गहन चिंतन से कहेगा, 'आप मंदिर तोड़ सकते हो, आप मजलिस को तोड़ सकते हो, लेकिन आपको मानव हृदय कभी नहीं तोड़ना चाहिए क्योंकि हृदय ईश्वर के रहने का स्थान है।' अपने हृदय की तरफ इशारा करते हुए वह कहेगा, ***'माफिल जुब्बती इल्लाह अल्लाह–अँगरखा के अन्दर ईश्वर के सिवाय कुछ नहीं है।'***

निजी व्यक्तित्व एक में नहीं बल्कि चार शरीरों में भुनाया जा सकता है– शारीरिक, एस्ट्रल (तारा संबंधी), कारण, सुप्र कारण। चेतना सम्बन्धी चार दशाएँ चार शरीरों से क्रमशः मिलती हैं: जागृत, स्वप्न, गहरी नींद और गुप्त या अतिउत्तम। चिंतन की प्रारंभिक अवस्था में भौतिक शरीर लाल रोशनी की तरह दिखाई देता है जो आग की लपट या ज्योति की तरह साधक को घेरे रहती है। जैसे ही साधक चिंतन में तरक्की करता है, तो वह भौतिक शरीर से तारा संबंधी शरीर में पहुँचता है। जो स्वयं अँगूठे के आकार की बड़ी चमकती रोशनी में प्रस्फुटित होती है। चेतना की स्वाभावस्था में एस्ट्रल शरीर के जरिए अनुभव होता है।

तब साधक अँगुली के पोर जैसी 'काली रोशनी' का अनुभव करता है जो कारण शरीर से मिलती है। चेतना की गहरी स्वप्नावस्था इस शरीर से अनुभव की जाती है। इस अवस्था को अंधकार की पूर्ण अवस्था, खालीपन की अवस्था कहते हैं जैसे एक व्यक्ति अपने अस्तित्व से अचेतन होता है।

आध्यात्मक इच्छुक को यह महत्वपूर्ण है कि वह चिन्तन के अभ्यास में दृढ़ रहे और दैवीय शक्ति में दृढ़ विश्वास रखे। यह अन्ततोगत्वा साधक को तुर्या की उच्चतम अवस्था तक पहुँचा देता है जहाँ पर सुप्र कारण शरीर का अनुभव होता है। इस अवस्था में साधक 'ईश्वर' से मिलन महसूस करता है जो ईश्वर स्वयं चकाचौंध करने वाली नीली रोशनी का अनुभव करता है जिसे शाश्वत नीली रोशनी कहते हैं। यहाँ अहम नीली रोशनी में मिल जाता है और साधक के पिछले कर्मों का आत्मयज्ञ में विनाश हो जाता है।

तब साधक को महसूस होता है कि ब्रह्माण्ड जो जागृत और स्वप्नावस्था में दिखता है आत्म के आश्रय पर गोचर पदार्थ है, ईश्वर जो इनसे किसी तरह प्रभावित नहीं होता है। रमन महर्षि के अनुसार, 'विश्व एक निष्पक्ष वास्तविकता की तरह दिखाई देता है जबकि मन बाहरी कृत हो जाता है और आत्म से इसका संबंध अलग हो जाता है। जब विश्व इस तरह देखा जाता है तो आत्म की सच्ची प्रकृति प्रदर्शित नहीं होती है जब आत्म महसूस होती है तब विश्व

अव्यक्तिगत वास्तविकता दिखना रुक जाता है।

एक पहुँचा हुआ साधक पूर्ण विश्व को आनंदी आत्मा का खेल समझता है जहाँ पर जागने वाला, जानी हुई और ज्ञान की प्रक्रिया एक साथ मिल जाते हैं और एक हो जाते हैं। शेख अब्दुल कादिर जिलानी, 'बारेपीर' या 'ग्रेट गाइड' के रूप में भारत में जाने जाते हैं। उसने कहा था, ''जीवन के महसूसीकरण और संतोष (फक्र) का तत्व यह है: एक व्यक्ति को विश्व की आवश्यकता नहीं है, वास्तविक 'धन' इसकी इच्छा न रखने में ही है।

भौतिक खुशहाली से वंचित होने के बावजूद मंसूर अल हल्लाज' ने पूर्ण संतुलन का आनंद लिया क्योंकि उसने विशाल अंदरूनी क्षेत्र, आध्यात्मिक साम्राज्य पर मन की चंचलता पर विजय हासिल कर ली थी। सर्वोच्च सत्ता से एकता होने पर, वह स्वतंत्र रूप से इन शब्दों को कहा करता था, 'अनल हक–मैं सच्चाई हूँ'–आध्यात्मिक आनंदातिरेक की दशा में'

ऐसा कहा जाता है कि उसे जनता के सामने सूली पर चढ़ा दिया गया– आजादी से अपनी एकता ईश्वर के साथ स्थापित करने के लिए–उसके नश्वर अवशेष इन पवित्र शब्दों को बोलते रहे!

क्षमा माँ का आँचल है

क्षमा में क्षमता है– ममता है– सहनशीलता है माँ जैसी। 'झुको इतना, कि गिरो न, खड़े भी रह सको' यही क्षमा का मूल मन्त्र है। वृक्ष जब पृथ्वी पर शान से सीना तानकर खड़ा होता है, तब उसे होने वाले असंख्य असह्य कष्टों को वह ही जानता है। पक्षियों के घोंसले, कीड़े–मकोड़ों को अपनी छाल पर रास्ता और कुल्हाड़ी की धार, सभी कुछ तो सहता है। यही सहना क्षमा है। सहकर भी कुछ न कहना। खड़े रहना अटर अटूट। कहीं कोई बदला नहीं, प्रतिशोध नहीं।

क्षमा के अंत में जो 'मा' है। उसमें 'माँ' का कितना गहरा आभास है। माँ अपने पुत्र के अनेक कष्टों को सहते हुए भी उसे क्षम्य करती रहती है। कितना विशाल हृदय है माँ का–आकाश की तरह जहाँ सबके लिए जगह है–सूरज से लेकर छोटे–छोटे चाँद–सितारों तक के लिए। माँ का आँचल आकाश की तरह असीमित होता है–अगणित। क्षमा दिखाई देने वाली वस्तु नहीं है–वह भीतर कहीं गहरे में पड़ी रहती है।

यौगिक प्रश्नोत्तरी

(साधकों के प्रश्न एवं उत्तर श्री सद्गुरु जी द्वारा)

प्रेषक – आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त

श्रावण का पवित्र महिना था, योगिराज जी के प्रसिद्ध सिद्धाश्रम श्री सिद्धगुफा सिद्धपीठ में रुद्र महायज्ञ चल रहा था, जिसमें अनेकों ब्राह्मण एवं तपस्वी महात्मा भाग ले रहे थे। आश्रम के सभी ब्रह्मचारी अपनी संयमित दिनचर्या से उस यज्ञ को सफल बनाने की चेष्टा कर रहे थे। दूर-दूर से आये हुए सैकड़ों योग प्रेमी सद्गृहस्थ एवं विरक्त एवं विरक्त ब्रह्मचारी श्री योगिराज जी के निर्देशन में साधना करते हुए अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न कर रहे थे।

प्रतिदिन की भांति आज भी प्रातः 5 बजे गीता का परम कल्याणकारी सन्देश सुनाकर योगिराज जी अपनी कुटिया में जाकर समाधि में लीन हो गये। आश्रम के कुछ ब्रह्मचारी एवं बाहर से आये साधक लोग भी अपनी-अपनी कुटिया में ध्यानाभ्यास करने लगे। कुछ समय बाद यज्ञशाला में वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा की जा रही वेदमन्त्रों की ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी। योगानुरागी गृहस्थी एवं विरक्त महात्मा लोग यज्ञशाला में एकत्रित हो गये और वहाँ बैठकर वेदमन्त्रों की पवित्र ध्वनि में अपने मन को एकाग्र करते हुए ध्यानाभ्यास करने लगे। प्रतिदिन की भाँति वेदपाठ का यह कार्यक्रम आज भी मध्यान्ह एक बजे तक चला। तत्पश्चात् फलाहार एवं कुछ क्षण विश्राम के बाद मध्यान्ह 2:30 बजे पाठ की दूसरी आवृत्ति आरम्भ हुई जो सायं 5:30 बजे तक चलती रही।

तब तक कई नये लोग भी आश्रम में पहुँच चुके थे। वे सत्संग भवन में योगिराज के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। उनमें से कुछ लोगों ने भाव विभोर संकीर्तन करना आरम्भ कर दिया। संकीर्तन में वे इतने तन्मय हो गये कि उन्हें समय का बोध तक नहीं हो पाया। वे एक के बाद एक भजन गाते जा रहे थे।

उनका अन्तिम भजन निम्नलिखित था:-

तुम ठाकुर हम पुजारी आ जाओ सांवरिया,
आ जाओ सांवरिया आ जाओ सांवरिया।।
टेक– तुम ठाकुर हम पुजारी............
मन–मन्दिर को स्वच्छ कियो अब आकर नाथ सजाओ
जगमग–जगमग छाये भीतर ऐसी ज्योत जलाओ।।
तुम पर मैं बलिहारी आ जाओ सांवरिया।
आ जाओ सांवरिया आ जाओ सांवरिया।।

टेक– तुम ठाकुर हम पुजारी..........
सुबह–शाम निज लगाके आसन प्रभु चरणों को ध्याऊँ।
होवे पुलकित रोम–रोम में सत्–चित्–आनन्द पाऊँ।।
हमको आश तुम्हारी आ जाओ सांवरिया।
आ जाओ सांवरिया आ जाओ सांवरिया।।
टेक– तुम ठाकुर हम पुजारी.........
योग–योगेश्वर सद्गुरु मेरे योग सुधा बरषाओ।
कृत कृत माने जन साधारण प्रेम लहर सरसाओ।
देन प्रभो तेरी न्यारी आ जाओ सांवरिया।
आ जाओ सांवरिया आ जाओ सांवरिया।।
टेक– तुम ठाकुर हम पुजारी..........
सिद्धों के सरताज योगेश्वर आशीष तेरा पाऊँ।
जन्म–जन्म तक हे परमेश्वर महिमा तेरी गाऊँ।।
तुम हो मंगलकारी आ जाओ सांवरिया।
आ जाओ सांवरिया आ जाओ सांवरिया।।
टेक– तुम ठाकुर हम पुजारी..........

भजन अभी पूरा नहीं हो पाया था कि ऊपरी मंजिल से नीचे उतरने वाली सीढ़ियों पर चरण–पादुकाओं की ठक–ठक आवाज सुनाई दी। भक्तों को समझते देर नहीं लगी कि योगिराज जी अपने कक्ष से नीचे उतर रहे हैं।

उन्होंने संकीर्तन बन्द कर दिया और भावुक होकर उच्च स्वर से जयकार करने लगे–

शंकर भगवान की जय हो, सिद्धगुफा सिद्धपीठ जी जय हो, सिद्धेश्वर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की जय हो–आदि आदि।

इतने में योगिराज जी की कुटिया के कपाट खुले और वे बाहर निकल कर हाथी की सी अपनी मस्तानी चाल चलते हुए सत्संगभवन की ओर बढ़े, वहाँ पहुँच कर अभयमुद्रा में मुस्कान के साथ उन्होंने उपस्थित जन समुदाय पर दृष्टिपात किया और फिर गम्भीर मुद्रा में अपने आसन पर विराजमान हो गये। सभी सत्संगियों ने खड़े होकर एवं सिर झुकाकर उन्हें अभिवादन किया और उनका संकेत पाकर यथास्थान बैठ गये।

कुछ क्षण मौन रहने के उपरान्त योगिराज जी ने एक बार चारों ओर दृष्टिपात किया और फिर अमृत बरषाने वाली अत्यन्त मधुर एवं गम्भीर वाणी में बोले– पवित्रात्माओ! तुम सब परम भाग्यशाली हो, तुम्हें अपने भाग्य को सराहना चाहिए जो कि तुम्हें परम कल्याणकारी

योगमार्ग मिला हुआ है। संसार में और सब कुछ मिल जाया करता है किंतु योगमार्ग बड़ी कठिनता से मिलता है। अब तुम्हें अपनी करनी में कोई कसर नहीं रखनी चाहिए। जैसा तुम्हें उपदेश दिया गया है उस प्रकार से खूब अभ्यास करते रहो और समाधि की ओर बढ़ने का प्रयत्न करो। योग जैसी अमर निधि को पाकर तुम निहाल हो जाओगे, कृतार्थ हो जाओगे। अतः कुछ कुर्बानी करो ध्यानयोग से तुम सब कुछ पा जाओगे।

देखो कालचक्र–युगचक्र को एक साथ घुमाने वाले सकल ब्रह्माण्डों के स्वामी तथा समस्त प्राणियों के आत्मा योगेश्वर श्री कृष्ण ने कितने ऊँचे शब्दों में योग की महिमा को बतलाया है:–

तपस्विभ्योऽधिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,
तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात् तपस्वियों से योगी श्रेष्ठ है, शास्त्रों के पारगत विद्वानों से योगी श्रेष्ठ है और कर्मकाण्डियों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन।

हम प्रतिदिन तुम लोगों को योग–सिद्धान्त समझाते रहते हैं, तुम लोग उन्हें समझकर उन पर आचरण करने का प्रयास करो, अवश्य परम कल्याण के भागी बन जाओगे। यह कहकर योगिराज जी ने अपना वक्तव्य समाप्त किया।

इतने में ही उपस्थित समुदाय में से एक साधक ने अत्यन्त विनयपूर्वक करबद्ध होकर निवेदन किया–

प्रश्नः– महाराज जी आपने अपने कल के प्रवचन में समाधि प्राप्ति के कई उपाय बताये थे और उनमें एक उपाय "**वीतराग पुरुषों का ध्यान**" भी बताया था। प्रभो! वीतराग पुरुष कौन कहलाते हैं और उनके ध्यान की विधि क्या है? इस बात को पुनः खोलकर समझाने की कृपा कीजिए।

उत्तरः– हाँ पुत्र सुनो! भगवान पतंजलि देव जी महाराज ने योगदर्शन के समाधि पाद में समाधि प्राप्ति के विविध उपायों का वर्णन करते हुए यह सूत्र लिखा है–

वीतरागविषयं वा चित्तम्।

अर्थात् राग रहित चित्त जिसने वासनिक अभिलाषा को त्याग दिया है और जो चित्त अविद्या आदि क्लेश से रहित हो चुका है ऐसे चित्त का ध्यान करने से योगी का चित्त समाधि को प्राप्त हो जाता है। संसार में असंख्य वीतराग पुरुष हैं। वे सभी महापुरुष जो गुणाधिकार को भलीभाँति समझकर निस्त्रैगुण्य स्थिति को प्राप्त हो चुके हैं तथा जिनके लिये गीता में कहा

गया है–

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

जिसका अन्तःकरण ज्ञान और विज्ञान से पूरी तरह तृप्त है अर्थात् प्रकृति के सभी विश्लेषणों पर जिसका पूरा अधिकार हो चुका है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना ये सब चीजें समान हैं वह महापुरुष युक्त योगी कहलाता है। इस प्रकार सिद्धों की श्रेणी में गिने जाने वाले योगैश्वर्य के धनी सभी महापुरुष वीतराग पुरुष कहलाते हैं।

वीतराग पुरुष के ध्यान की विधि यही है कि साधक उनकी आकृति का दृढ़ता पूर्वक चिन्तन करता रहे, उसी आकृति को अपनी धारणा का विषय बनाये। ऐसा करते हुए कालान्तर में वह समाधि को प्राप्त हो जायेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। गीता में जगदात्मा श्री कृष्णचन्द्र ने इस सिद्धान्त का पूरा–पूरा अनुमोदन किया है, अर्जुन को उपदेश देते हुए वे आदेश देते हैं।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

हे अर्जुन! तू अपना मन मुझमें लगा दे और अपनी बुद्धि को मेरे अन्दर प्रवेश करा दे। ऐसा कर लेने के उपरान्त तू मुझमें प्रवेश कर जायेगा मुझमें ही रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

''वीतराग विषय वा चित्तम्'' का भी यही भाव है कि साधक को वीतराग पुरुषों के मन में मन बुद्धि में अपनी बुद्धि और अहंकार में अहंकार विलीन कर देना चाहिए ऐसा करने से वह उन्हीं के मन वाला और उन्हीं की बुद्धि वाला बनकर स्वयं भी वीतराग बन जायेगा। ध्येय के सभी गुण धर्म उसके अन्दर प्रकट हो जायेंगे।

प्रश्न:– हे गुरुदेव! आपका यह कथन ठीक है कि किसी वीतराग महापुरुष के अथवा अपने इष्टदेव के मन में मन और बुद्धि में बुद्धि मिला देने से साधक उनके गुण धर्म एवं शक्तियों से विभूषित हो सकता है किंतु उनके मन में अपना मन और बुद्धि में अपनी बुद्धि को मिला देना कुछ कठिन सी प्रक्रिया प्रतीत होती है। अतः इस विषय को विस्तार पूर्वक समझाने की कृपा कीजिए।

उत्तर:– हे पुत्र! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर श्री मद्भागवत पुराण देता है। योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द जी महाराज ने भागवत में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि मन में मन और बुद्धि में बुद्धि का विलय हो सकता है।

जैसे:–

विषयानध्यायतोचित्तं विषयेषु विमज्जति।
मामनुस्मरतो नित्यं मय्येवप्रविलीयते।।

अर्थात् सांसारिक विषयों का चिन्तन करता हुआ चित्त उन रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों में ही रचा पचा रहता है किंतु मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करता हुआ वही चित्त मुझमें ही पूरी तरह से मिल जाता है।

गीता में भी तो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया है कि हे अर्जुन! तू अपना मन और बुद्धि मुझमें लगा ले। इतना कर लेने पर तू मुझमें ही मिल जायेगा– मेरा ही रूप बन जायेगा। अगले दो श्लोकों में उसे सावधान करते हुए पुनः कहा गया है–

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।

हे अर्जुन! यदि तू अपना चित्त मुझ परमेश्वर में लगा नहीं सकता तो अभ्यास रूप योग के द्वारा अर्थात् ध्यानाभ्यास के द्वारा मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न कर। यदि तू मंत्र जप एवं ध्यानाभ्यास आदि करने में भी असमर्थ है तो मुझ परमेश्वर को ही परम आश्रय समझकर निष्काम भाव से यज्ञ, दान तथा तप आदि शास्त्रविहित कर्मों को मेरी प्रसन्नता के लिए करता जा। मेरे निमित्त कर्म करता हुआ भी तू मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।

गीता के 9वें अध्याय के श्लोक संख्या 27–28 में भगवान ने आदेश दिया है–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।

हे अर्जुन! तुम जो भी कर्म करते हो वह मेरे लिए करो जो कुछ खाते हो वह मेरे लिए खाओ। जो यज्ञादि कर्म करते हो तथा दान करते हो वह मेरी प्रसन्नता के लिए करो। जो भी तपश्चर्या आदि करते हो वह सब मेरे लिए करो। इस प्रकार सभी कर्मों को भगवद् अर्पण कर देने से तू शुभाशुभ कर्मबन्धन से मुक्त हो जायेगा और उनसे मुक्त हुआ तू मुझ परमेश्वर को ही प्राप्त हो जायेगा।

जो साधक अपने सभी कर्म अपने इष्टदेव को अर्पित कर देता है तो वे कर्म उसके लिए शुभाशुभ फल के दाता नहीं बनते प्रत्युत वे उसे जन्म मरण के चक्र से छुड़ा देते हैं।

इस प्रकार हे पुत्र! मन में मन, बुद्धि में बुद्धि, चित्त में चित्त और अहंकार में अहंकार का विलय हो सकता है। क्योंकि जहाँ पर जिन वस्तुओं का साधर्म्य होता है वे दोनों वस्तुएँ मिल

सकती है जबकि विधर्मी वस्तुएँ नहीं मिला करती, जल में जल मिल सकता है, दूध में दूध मिल सकता है दूध में जल भी मिल सकता है क्योंकि जल उसमें पहले से ही विद्यमान है किंतु जल में रेत नहीं मिल सकता है।

साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह साधन परायण रहे, अपनी नियमानुवर्तिता का दृढ़ता से पालन करे, अपने साधन एवं साध्य में पूर्ण श्रद्धा एवं उत्साह रखे, साधना में उकताये नहीं।

योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है। मनमें एकाग्रता का उदय होना तभी सम्भव होगा जब उसमें सतोगुण की वृद्धि हो जायेगी इसके लिए आवश्यक है कि साधक यम नियम आदि योगाङ्गों का दृढ़ता पूर्वक पालन करें। शीघ्राति शीघ्र मन की एकाग्रता चाहने वाले साधकों के लिए वीतराग पुरुषों का ध्यान करना विशेष लाभदायक है

अस्तु:-

अपने इस उपदेशात्मक वक्तव्य के साथ ही योगाचार्य जी ने आज के सत्संग को विराम दिया।

सब में राम

श्री रामकृष्ण परमहंस उपदेशामृत बरसा रहे थे। सहसा एक व्यक्ति ने नितान्त बालकोचित भाव से कहा, 'महाराज! मैं तो पापों की खान हूँ। भला मुझमें ईश्वर का निवास कैसे हो सकता है ?'

परमहंस महाराज ने उस व्यक्ति की थोड़ी-सी भर्त्सना की और बोले, 'अपने भीतर पाप-ही-पाप क्यों देखते हो? यह क्यों नहीं विश्वास करते कि जिसने एक बार भी सच्चे हृदय से ईश्वर का ध्यान किया और स्वयं को भगवान् के प्रति अर्पित कर दिया, वह तर गया। ऐसे पापियों की कहानियाँ क्या तुमने नहीं सुनी हैं, जिन्होंने एक बार प्रेम से भगवान् को पुकारा और प्रभु नंगे पाँव दौड़कर उनकी रक्षा को आ गये। भगवान् के दरबार से पाप मुक्ति का आश्वासन शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।'

श्रोता दुराग्रही था, बोला, 'लेकिन भगवान् के सामने स्वयं को अर्पित कैसे किया जाये, उन्हें एक बारगी प्रेम से कैसे पुकारा जाये?'

परमहंस के स्वर में दुलार भरा क्रोध आया। बोले, 'रे मूर्ख! क्या यह भी मुझे बताना होगा, बच्चे को कौन शिक्षा देता है कि तू रो ! क्या तुझमें अबोध शिशु जितनी चेतना भी नहीं है कि तू अपने प्रभु को प्रेम से पुकार सके।'

योग साधना से विश्वशांति

डा. जे.पी. शर्मा, हिमाचल प्रदेश

आज मानव विश्व युद्ध की ज्वाला से झुलस रहा है। संसार भयंकर बारूद से अटा पड़ा है। बारूद के ढेर में न मालूम कब कौन तीली सुलगा दे, कोई नही जानता। विश्व के सारे देश असमंजस में जी रहे हैं, कौन सा प्रभात मृत्यु बनकर आ जाये? अनेकों समस्यायें विश्व के सामने सुरसा बनकर खड़ी है। कारण स्पष्ट है, एक दूसरे पर विश्वास की कमी। आज तो मानव को अपने पर ही विश्वास नहीं रहा, दूसरों पर कैसे विश्वास करे। स्वार्थता में अपने ही लिये निर्णय बदल जाते है। स्वार्थ परायणता इतनी हावी हो गई है, मानवता नाम की कोई महत्ता ही नहीं समझता। दुनियाँ की हर वस्तु पर अपना एकाधिकार जमाने की लालसा व्यापी हुई है, क्या बदलाव आया है, मानसिकता में? सोचने की शक्ति भी शनै: शनै: क्षीण होती जा रही है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत पूर्ण रूपेण सत्य हो रही है। स्वार्थ सिद्धता में अपने पड़ोसी का भी ध्यान नहीं है, आज के मानव को। अपने अहंकार में चूर हुए देश, दूसरे देशों की मानवता, वास्तविकता तथा अस्तित्व मिटाने पर उतारू हैं। हमारे पूर्वजों ने सारे भूखण्ड को अपना परिवार माना था–

वसुधैव कुटुम्बकम्

अर्थात् सम्पूर्ण भू–भाग ही हमारा परिवार है। कैसी अच्छी अवधारणा रही है, हमारे पूर्वजों के कर्तव्य परायणता की? मगर यह विचारधारा, विश्व के अन्य देश नहीं मानते, क्योंकि वे अपने को सर्वशक्तिमान समझने लगे हैं। अच्छा वही है, जो स्वयं भी जीवे तथा दूसरों को भी शांति से जीने दे। वास्तव में हमारा गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, हमने सदा दूसरों की भलाई की कामना की है–

सर्वेभवन्तु सुखिन:, सर्वेसन्तु निरामया।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दु:खभाग्यभवेत।।

परंतु इसके विपरीत आज अणु बम, हाइड्रोजन, हीलियम बम इत्यादि महाविनाशक हथियारों से भूमण्डल भरा पड़ा है। जो विश्वशान्ति तथा मानवता के लिए घातक है। इसका मुख्य कारण विस्तारवादी सोच तथा अहंकार है। एक दूसरे पर हावी होना चाहता है। मानव धर्म की अवधारणा ही बदल चुकी है। विश्व भाईचारा वाली सोच तथा संस्कृति के सद्विचार, सदाचार का सीधा उलंघन होता दिख रहा है। पर यदि देखा जाये तो–

धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा। धर्मो धारयते प्रजा:। धर्मो धारयेत लोकान्। धारणाद् धर्ममित्याहु:। धर्मोरक्षति रक्षित:। आदि वचनों के आधार पर विशुद्ध धर्म ही विश्व

का धारक है। ब्रह्माण्ड धर्म पर ही टिका हुआ। परंतु आज का विश्व धर्म, ईश्वर का नाम लेना भी मूर्खता है। अतः ईश्वर के अस्तित्व को नकारना ही बुद्धिमान होने की कसौटी तथा विद्वता का प्रमाण पत्र माना जाता है। फलतः सर्वत्र चारों ओर अशान्ति एवं विद्रोह की चिनगारी सुलग रही है। आर्थिक सम्पन्नता का ताण्डव सर्वत्र व्याप्त है। धर्म, अध्यात्म तथा योगसाधना तथा सत्संग, सदाचार तथा सद्विचारों का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है, जो अति विचारणीय विषय है।

भारत सदैव से आध्यात्मिकता में विश्व का धर्मगुरु रहा है तथा पूरे विश्व को धर्म का मार्ग बतलाया है। महर्षियों ने खुले मन से घोषणायें की है, कि प्राणीमात्र का कल्याण केवल परमात्मा की प्राप्ति से ही होता है, धन तथा कर्मोपयोगी अन्य साधनों तथा सामग्रियों से कदापि नहीं। यही कारण था कि प्राचीन काल में हमारे राजा महाराजा, राज–पाट एवं भोग विलास को त्याग कर वनों को चले जाते थे तथा वहाँ साधु सन्तों का जीवन व्यतीत करते थे। उनका मात्र ध्येय भगवत प्राप्ति का ही रहता था, भक्ति में रत हुए स्वर्गामी हो जाया करते थे। योगसाधना ही ऐसा मार्ग है, जिससे ईश्वर प्राप्ति सहज हो जाती है, अन्य साधन प्राणी को भटकाते रहते है। योग साधना से सार्वभौम शान्ति, अचल समाधि, दिव्यज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति, उज्जवल आत्म प्रकाश की प्राप्ति होती है। मन तथा बुद्धि पूर्ण रूपेण शुद्ध–परिष्कृत हो जाती है।–

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि

आज विश्व के विद्या संस्थान, विश्वविद्यालय कोई भी धर्मज्ञान, सदाचार की शिक्षा नही दे रहे हैं, जब कि वायुमण्डल, खुला आकाश, धूप तथा चाँदनी के देने वाले शुद्धरूप से विद्या के अधिष्ठाता भगवान का द्वार उनके लिए चौबीसों घंटे खुला है। परंतु मनुष्य को उधर झाकने का अवसर ही कहाँ है, वैसे भी माया की चकाचौंध के कारण उस तरफ देखने का सुअवसर आता ही नहीं है। वास्तव में काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार, मन को परमात्मा की तरफ जाने से बार–बार रोकते हैं। मन पापी है, मन कामी है, धोखेबाज है तथा जो विषय परमात्मा की प्राप्ति में बाधक है, जीव का मन बार–बार उधर ही जाया करता है। वैसे भी योग, प्राणी को परमात्मा से जोड़ता है, परंतु भोग सदैव परमात्मा से दूर करते हैं। कलयुग में मानवीय मूल्यों का जितना ह्रास होता जा रहा है, वैसा पहले कभी नहीं देखा गया। ईश्वर दर्शन सत्यता में होता है, असत्यता में कदापि नहीं। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अङ्ग सत्य के धर्म से टिके है, अगर मनुष्य की तरह उनमें असत्यता आ जाये, तो महाप्रलय हो जायेगी। सूर्य, गर्मी देने बन्द कर देंगे, चाँद अपनी शीतलता का परित्याग कर देगा, उसी तरह अन्य ग्रहे भी अपने–अपने कर्तव्य से हट जायेंगे, तब सोचिये सृष्टि कैसी होगी। शास्त्रों का कथन है कि ज्ञान और परमात्मा श्रद्धा, योग, वैराग्य की साधना द्वारा ही प्राप्य है, अर्थ से कदापि नहीं–

श्रद्धया धार्यते धर्मो नार्थस्य बहुराशिभिः।
निष्किंचना हि ऋषयो श्रद्धावन्तो दिवंगताः।।

तथा

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। अति अल्प श्रद्धा शुद्ध रुचिपूर्वक योग–साधना से भी वह अतिशीघ्र प्राप्त हो जाता है। अतः आज तो धन और सांसारिक सुख की ही अति आवश्यकता हो गई है। फिर उपरिनिर्दिष्ट दो परस्पर विरोधी वस्तुऐं एक साथ कैसे प्राप्त हो सकती हैं? अतः योग से जीवन पूर्ण सुखी तथा शान्त बना रहता है।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।

ध्रुव अबोध बालक था। देवर्षि नारद ने ही ध्रुव को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाया, उसे दीक्षा दी। योग दीक्षा के द्वारा ही कठिन साधना के बल पर ध्रुव ने भगवान श्री हरि की प्राप्ति की। मात्र एक सप्ताह की साधना से उसे देवता, सिद्ध, मुनि, यक्ष, किन्नर, विद्याधर आदि अन्तरिक्षचारी प्राणी, जो साधारणतः पृथ्वीवासियों को दृष्टिगोचर नहीं होते, उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। साधना के फलस्वरूप ही श्रीहरि ने साक्षात् नरसिंह नारायण रूप धारण करके बालक ध्रुव की पिता के अत्याचारों से रक्षा की। ध्रुव ने किसी विद्यालय में यह शिक्षा नहीं ली थी। भगवान के रूप दर्शन से प्रसन्न होकर ध्रुव की इच्छा हुई कि वह भगवान की स्तुति करे, अतः श्रीहरि ने शंख के अग्रभाग से ध्रुव के कपोल को स्पर्श कर दिया–''पस्पर्श बाल कृपया कपोले।'' बस क्या था, क्षणभर में उसके शरीर में बिजली की भाँति शक्ति संचारित हो गई तथा समस्त वेद–शास्त्रों का ज्ञान तुरन्त ध्रुव को प्राप्त हो गया। कहने लगा अरे? यह क्या हुआ? मेरे अन्दर की सारी विद्यायें जाग गई हैं। मेरे हृदय में अभूतपूर्व प्रकाश जाग्रत हो रहा है, निश्चित ही भगवान के शंख के स्पर्श मात्र से मेरे अन्दर प्रसुप्त शक्तियाँ जाग उठी हैं। मेरी सारी इन्द्रियाँ दिव्य शक्तियों से ओत–प्रोत हो गई हैं। मेरे प्राण भी चमत्कृत हो उठे हैं। यह सब श्री प्रभु का ही चमत्कार है। अतः ध्रुव अन्तर्भाव से श्री प्रभु की स्तुति करने लगा–

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां,
संजीवयत्यखिलशक्ति धरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्,
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।।

(श्रीमद्भा. 4/916)

अर्थात् हे प्रभो! आप सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, आप ही मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी इस सोई हुई वाणी को सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणों को चेतनता देते हैं। मैं आप अन्तर्यामी भगवान को प्रणाम करता हूँ। ध्रुव की भक्ति कथा सारे हिन्दू शास्त्रों में विभिन्न रूपों में वर्णित है। सूर, तुलसी रचित साहित्य

में इसका उल्लेख मिलता है। वही ध्रुव, आज अन्तरिक्ष में 'अटल ध्रुवतारा' बनकर चमकते हैं। ध्रुव स्थिर हैं तथा अन्य सबसे सर्वोच्च हैं–

ध्रुवँ अविचल कबहूँ न टरै।
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।।

अर्थात् ध्रुव भगवान की कृपा से आजीवन सार्वभौम सम्राट बने रहे और अन्त में सबसे ऊँचे, अन्तरिक्ष में ध्रुवलोक को प्राप्त हुए। वहाँ वे स्थिर हैं तथा किसी की परिक्रमा नहीं करते। समस्त सप्तर्षि मण्डल उन्हीं की परिक्रमा करता है। केवल पाँच वर्ष की अल्पायु में ही ध्रुव को सारे भूमण्डल का साम्राज्य, समस्त योग–सिद्धियाँ एवं विद्यायें प्राप्त हो गई थीं। इसी प्रकार की घटनायें प्रह्लाद तथा चन्द्रहास आदि बालकों के साथ हुई थी। योग भगवान सबको समान रूप से प्राप्त हैं।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मामभक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

भगवान अपनी तरफ एक पग भी चलने पर समस्त चमत्कृत सिद्धियों तथा देवता, सिद्ध, मुनियों के साथ अपनी पूर्ण तीव्र गति से भक्त की ओर चल देते हैं। महारानी द्रोपदी ने चीर हरण के समय अपनी पूर्ण शरणागति से जब श्रीकृष्ण भगवान को पुकारा, तो भगवान ने साड़ी की लम्बाई अक्षय कर दी, उसी प्रकार गजराज ने ग्राहग्रस्त होकर ज्योंहि प्रार्थना की, त्योंही श्रीहरि दौड़े चले आये तथा ग्राह से गजेन्द्र को मुक्त कराया–

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेष,
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्,
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्।।

(श्रीमद्भा. 8/3/30)

व्यास पुत्र शुक देव मुनि कहते हैं– परीक्षित! गजेन्द्र ने बिना किसी भेदभाव के निर्विशेष रूप से भगवान की स्तुति की थी, इस कारण भिन्न–भिन्न नाम और रूप को अपना स्वरूप को मानने वाले ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा को नहीं आये। अतः सर्वात्मा होने से सर्व देव स्वरूप भगवान श्रीहरि स्वयं प्रकट हो गये।

संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है? जो सर्वलोकाधिपति सर्वेश्वर भगवान श्री हरि के प्रसन्न होने पर मानव को प्राप्त न हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है।

तस्मिन तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे।

भगवान के प्राप्त करने के तीन मार्ग सुगम कहे गये हैं– भक्ति योग, ज्ञान योग तथा

ध्यान योग। ये कृपासागर, परमानन्द तथा सुधासिन्धु है। भक्त उनकी तरफ एक कदम बढ़ाता है, तो परमात्मा भक्त की तरफ नंगे पैरों से दौड़े चले आते है। बिना किसी लोभ, लालच के भक्त के बन जाते है। भक्त सुदामा के बारे में यह तथ्य प्रत्यक्ष है।

भक्त भगवान के कृपा प्रसादों का दिव्यातिदिव्य चमत्कार तथा आनन्द के रूप में अनुभव करने लगता है। सुदामा जब भगवान श्रीकृष्ण के महलों से चले थे, रास्ते भर में यही सोचते रहे कि मैं जैसे आया था, वैसे ही वापिस जा रहा हूँ, जब मुझे मेरी पत्नी सुशीला पूछेगी कि मेरे मित्र ने क्या दिया, तब मैं क्या उत्तर दूँगा? बड़े अनमने मन से मार्ग तय किया तथा अपने घर पहुँचे। घर जाकर जो स्वयं देखा तब उन्हें भगवान की कृपाओं का आनन्द–चमत्कार समझ में आया। परन्तु भक्त इन सांसारिक आनन्दों तथा धन से दूर ही रहा करता है। उसे लौकिक, मायिक, क्षणिक, सुखप्रद एवं फल में घोर नरकादिप्रद, दुःखदायी पदार्थ सर्वथा असत्य, असार मालूम देते हैं। अमृत के तालाब में स्नान करके भला कोई भक्त गन्दे पानी के तालाब, पोखर या बावड़ी में क्यों कर नहाना चाहेगा? उसी तरह भगवान का सेवक कामिनी रूपी माया जाल में क्यों फंसना चाहेगा? भक्त सांसारिक भोगों की अपेक्षा नहीं किया करता–

जिमि बड़ सर पूरन जल होउ, छुद्र कुण्ड रति धारि न कोऊ।
तिमि विप्रहु ब्रह्मानन्द पाई, बेदन्ह सन मन लेइ हटाई।।

अर्थात् सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्व से जानने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है. (गीता 2/46)

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिम जन बड़भागी।।

भगवान का मुख्य अङ्ग धर्म होता है। जो प्राणी उसकी रक्षा के लिए तनिक भी प्रयत्न करता है, उसे सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। जो विश्व हित में शान्ति की कामना करता है, उसका जीवन योगमय तथा सार्थक हो जाता है। भगवान इसी हेतु समय–समय पर अवतरित होते है। यथा– (गीता 4/7–8)

जब जब होइ धर्म की हानि, अधरम वृद्धि करें अज्ञानी।
तब तब मैं निज माया द्वारा, रूप धरहुँ प्रगटहूँ संसारा।।
सन्तन्ह के दुःख सोक निवारन, पापिन्ह दुष्कर्मिन्ह संहारन।
अधरम नासि धरम थापन, जुग जुग प्रगटहुँ कन्तीनन्दन।।

अर्थात् हे अर्जुन! जब जब संसार में धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं अपनी योगमाया से साधु पुरुषों, सन्तों का उद्धार करने तथा पापियों का विनाश करने के लिए और धर्म स्थापनार्थ जन्म लेता हूँ।

योगो योग विदा नेता– योगेश्वर भगवान साक्षात् योग विग्रह है। उनका प्रत्येक शरीरांग धर्ममय है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, विश्वप्रेम, शरीर के बाहर–भीतर की पवित्रता, दान, स्वाध्याय, सन्तोष, ईश्वर प्रणिधान, ध्यान, धारणा तथा समाधि सब योग के ही अङ्ग माने गये है तथा ये ही सब धर्म के अङ्ग होते है। इन्हें सारे धर्म खुले मन से स्वीकार करते है, इन्हें ही मानव धर्म समझा जाना चाहिए।

इस प्रकार जितेन्द्रिय तथा अहिंसा प्रेम से सारे मानव जगत के प्राणियों की रक्षा होगी तथा सत्यवाणी–सदाचार की भावना से एक दूसरे देश में प्रेम का संचार होने लगेगा। प्रेम ईश्वर का प्रतीक होता है, अतः प्रेमभावना जागृत होने से ईश्वर में आस्था–विश्वास बढ़ेगा जिससे देशों की आपसी कटुता, मन–मुटाव, धीरे–धीरे कम होता जायेगा। संसार परम शान्ति की तरफ अग्रसर होगा। जब सब जगह शान्ति होगी तब आपसी युद्ध नहीं होंगे। युद्ध न होने से भीषण हथियारों का निर्माण भी नहीं होगा। यही एक योगी की कामना होती है कि संसार में सर्वत्र शान्ति का ही साम्राज्य हो तथा परमानन्दित प्राणी हों–

एकीभाव योगरत जोई, व्यापक लखै आत्मा सोई।
निजमहँ सब जीवन्ह कहँमानी, समदरसी योगी विज्ञानी।।
जो मम् रूप लखै चहुँ ओरी, सब जीवन्ह महँ मूरति मोरी।
सो नहि मोर कृपा बिलगाही, रहहुँ अगोचर मैं तेहि नाहीं।।

भाव यह है कि जैसे स्वप्न से जागा मनुष्य स्वप्न के संसार को अपने अन्दर देखता है, वैसे ही मनुष्य सम्पूर्ण भूतों को अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा के अन्तर्गत स्वप्न के आधार पर देखता है। जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतों में सब के आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही (व्यापक) देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मुझ में एकीभाव से स्थित है।

एक सच्चायोगी ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रखता है। अतः मेरा अनुरोध है कि प्राणीमात्र आपसी राग, द्वेष, स्वार्थ, विस्तारवादी सोच तथा कामनाओं का त्याग करें तथा योग की दिनचर्या अपनाने का प्रयत्न करें, इससे स्वयं ही ईश्वरीभाव जागृत होंगे। आपसी विश्वास, आपसी भाई–चारा तथा प्रेम सदाचार बढ़ेगा और सारा मानव जगत शान्ति तथा सुख की अनुभूति करेगा।

ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया

सिद्ध गुफा की रज में प्रभु का, ऐसा है वरदान,
(सबका होता है कल्याण)–2
संशय इस पर करने वाला, रोता है इंसान,
(सबका होता है कल्याण)–2

1. भूले भटके, दीन–दु:खी, जग से धोखा खाये लोग,
हारा आया, वक्त का मारा, विपदा कौन हटाये रोग,
लोभी, कामी, क्रोधी, छलिया, जिनको केवल भाये भोग,
दु:ख को दूर भगाने को, दौड़े सीखने, आये योग,
पाप का धब्बा यहाँ जल ही, धोता है श्रीमान्,
(सबका होता है कल्याण)–2

2. पापिन से छुटकारा को, अभिवावक थे दाँव में,
देख प्रभु को खुश हुए, अपने ही निज गाँव में,
करुणा दृष्टि पड़ते ही, रमरती प्रभु पाँव में,
दिव्य समाधि लग गई, प्रभु कृपा की छाँव में,
गुरु कृपा से भक्त भी बन जाता है भगवान,
(सबका होता है कल्याण)–2

3. योगेश्वर प्रभुजी मेरे, करुणा के अवतार,
ऋषि, मुनि हार गये सब, वे हैं अपरम्पार,
सृष्टि के कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता, खाते अहंकार,
शरणागत को वरदहस्त देते हैं करतार,
डंके चोट पर राजेश सबसे, करता है ऐलान,
(सबका होता है कल्याण)–2

गुरुदेव की करुणा कृपा

सुभाष चंद साहू, उड़ीसा

परम करुणालय वरुणालय मेरे परम आराध्य श्री गुरुदेव के चरणों में आश्रित होने के बहुत पूर्व बचपन से ही प्रभु श्री चंद्रमोहन जी महाराज के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। प्रतिवर्ष दुर्गापुर में गुरुजी के दर्शन पाकर मैंने अपने आपको कृतार्थ किया है। कई बार ऋषिकेश एवं सवाई में गुरुजी के आश्रम में गुरुजी के आशीर्वाद और कृपा का पात्र होने का अवसर भी मिला है। हमारा परिवार अपना सारा सुख-दुःख प्रभु के चरणतल में समर्पित करता आ रहा है।

मेरे पिता श्री कृष्ण चन्द साहू ने दुर्गापुर के आलॉय स्टील प्लान्ट में कार्यरत रहने के दौरान सन् 1976 से चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपादृष्टि के रूप में दीक्षा ग्रहण की और सात्विक मार्ग में जाकर हम सबको भी उसी श्रोत में जाने का सौभाग्य प्रदान किया।

मैंने सन् 1986 से प्रभु जी से दीक्षा ग्रहण के रूप में यथासाध्य प्रभु के निर्देशानुसार ध्यान जप करके प्रति मुहूर्त उनके सान्निध्य के लिए जीवन को धन्य माना। विवाह के बारह वर्ष बाद पत्नी की स्वइच्छा से ब्रह्मचारी दासलाल जी महाराज से पिछले वर्ष पवित्र विजयादशमी की तिथि में दीक्षा ग्रहण करके कृतकृत्य होने का सौभाग्य लाभ किया। उनसे दीक्षा ग्रहण करने के बाद नित्य हम दोनो मिलकर प्रभुजी की पूजार्चना और जपध्यान, निर्धारित समय में करते आ रहे है। प्रभुजी की अपार कृपा से हमारे दो बेटे हैं। बड़ा बेटा सिद्धान्त बारह वर्ष का है एवं सातवीं कक्षा में पढ़ता है। छोटा बेटा सुमन आठ वर्ष का है, दूसरी कक्षा में पढ़ता है। पिछले तीन-चार वर्षो से हमने सवाई आश्रम में दुर्गापूजा के अवसर पर प्रभुजी के जन्मोत्सव में उपस्थित रहते हुए विभूकृपा लाभ करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। प्रभुजी की करुणा रोम-रोम में अनुभव करने पर भी प्रत्यक्ष रूप में कोसों दूर रहते हुए इस अकिंचन शिष्य के प्रति अपनी कृपा को इस पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करते हुए मैं अपने आप को धन्य महसूस करता हूँ।

दिन था आठ नवंबर, 2008। समय शाम के चार बजे। छोटा बेटा श्रद्धा सुमन सबके मना करने के बावजूद अपनी छोटी साईकिल लेकर निकल पड़ा और रास्ते में गिरकर उसकी बाईं हाथ पर गहरी चोट आ गई। डाँट खाने के डर से किसी से कुछ न कहते हुए वह चुपचाप घर आकर सो गया। उसे उठा कर देखता हूँ कि हाथ टूट गया है। लोकल डाक्टर के पास प्राथमिक चिकित्सा कराने के बाद मैंने और मेरी पत्नी ने दूसरे दिन उसे कटक के बड़े अस्पताल में ले जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँचकर एक्स-रे किया और डॉक्टरों को रिपोर्ट दिखाया। गंभीर केस सोचकर हमें दिन के साढ़े एक बजे तक इंतजार कराया गया। ओ.टी. के

सभी केस खत्म करने के बाद तीन डॉक्टरों ने मिल कर मेरे बेटे का मुआवना किया। आपस में अंग्रेजी में बात करते हुए उन डॉक्टरों की बातचीत से लग रहा था वे कह रहे थे इस केस में ठीक होने की सम्भावनाएँ कम थीं।

वे सुमन को भीतर ले गए और हमें बाहर इंतजार करने का इशारा किया। ओ.टी. के बाहर मैं और मेरी पत्नी हताश होकर बैठे रहे। केवल गुरुजी का स्मरण करने के सिवाय हमारे पास कोई चारा नहीं था। भीतर से बेटे के रोने की आवाज हमारे धैर्य की परीक्षा ले रही थी। आँखें मूँद कर प्रभु के चरणों में आत्मनिवेदन कर हम बाहर इंतजार कर रहे थे। बेटे की चीख सुनकर पत्नी भी रो रही थी। मेरे धैर्य का बाँध भी टूट रहा था।

ऐसी असहाय परिस्थिति में गुरुजी को आकुल निवेदन करते हुए हम पुकार रहे थे। "प्रभुजी रक्षा करो। मेरा बेटा आकुलक्रंदन कर रहा है। दया करके विराजमान हो।"

मिनटों बाद बेटे के रोने की आवाज आनी बंद हो गई। ओ.टी. से निकलते हुए Attendant को परेशान होकर मैंने पूछा, "भैया, क्या मेरा बेटा बेहोश हो गया है?" उसने सिर्फ इतना कहा कि सब ठीक है कुछ देर बाद ओ.टी. का दरवाजा खुला। बेटे के हाथ में बैंडेज बँधा था। मैं भीतर दौड़ा और बेटे को सीने से लगा लिया। डॉक्टर बाहर निकल गए। मैंने बेटे से पूछा, "बेटा, बहुत दर्द हुआ होगा, ना?" जवाब में उसने जो कहा, उसे सुनकर मेरी आँखें भर आईं। पत्नी ने भी रोकर उसे गले से लगा लिया।

सुमन ने कहा, "पापा, जब मुझे सुलाकर डॉक्टर मेरे हाथ को खींचकर सीधा कर रहे थे, मैंने देखा कमरे में एकाएक अंधेरा छा गया। एक गोरे, दाढ़ी वाले बाबा (हमारे पूज्य गुरुदेव जी) ने आकर डॉक्टरों को हटाया। अपने हाथों को मुझ पर आशीर्वाद की मुद्रा में रखा और फिर एक नीले प्रकाश से मेरे शरीर में प्रवेश किया। फिर मुझे जरा भी दर्द नहीं हुआ। उन्होंने खुद मेरे हाथ में बैंडेज किया। उठकर देखता हूँ कि मैं टेबल पर बैठा हुआ हूँ। डॉक्टर मेरे गले पर गुरुजी के लॉकेट को देख रहे हैं।"

मन में निश्चित हुआ कि वो दाढ़ी वाले बाबा कोई और नहीं हमारे गुरुजी ही थे। हमारे जीवन के सर्वस्व, घट-घट में विराजमान, सकल शक्ति के आधार, परम कल्याणमय प्रभुजी ही वो थे जो इतनी दूर रहकर अपने स्वार्थ के लिए निवेदन करते हुए इस अकिंचन की पुकार सुनकर स्वशरीर विराजमान होकर मेरे बेटे को ठीक कर दिया।

बहुत दिनों से मन में उठते इस सवाल का जवाब सा मिल गया। कभी-कभी मन में ख्याल आता था, प्रभुजी बड़े-बड़े भक्तों के लिए तो संकट में खड़े होते ही हैं पर क्या हमारे जैसे इतनी दूर में रहने वाले भक्तों पर गुरुजी की नजर है? या शायद हम उनके उपयुक्त शिष्यों में से नहीं हैं। आज वो संशय दूर हो गया। प्रभुजी ने इतनी दूर रहते हुए भी हमें अनदेखा नहीं किया। इस लेख के माध्यम से उनके चरणतल में अपना शीश नमन कर मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ।

मोरि सुधारी सो सब भांती

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

इन दिनो मन में कुछ उच्चाटन चल रहा है। माह दिसम्बर 08 है। मंत्र जाप में भी मन नही लग रहा है सो सोचा कि पूज्यपाद गुरुदेव श्रीयुत चन्द्रमोहन जी द्वारा लिखित–सवाई के चमत्कारिक चरित्र, ब्रह्मचारी गोपालानंद के ध्यानानुभव, मेरा सवाई आगमन और मन की एकाग्रता के साधन आदि पुस्तकें पढ़ी जाये ताकि संस्मरण और कथानकों से रूचि जाग्रत होकर मन अच्छा हो जाये।

मै पूज्यपाद श्री गुरुदेव की चरणशरण जुलाई 1956 में एक रोगी के रूप में आया था। पहिली गुरुपूर्णिमा पर आश्रम में बाहर से आने वाले कुल 48 व्यक्ति थे और ग्रामवासी अलग। तब से आश्रम की जो ख्याति और विस्तार निरंतर हुआ वह पूज्य गुरुदेव का पुरुषार्थ और उसके पीछे श्री प्रभुजी की कृपा रही है। यह मेरा सौभाग्य रहा कि असफलताओं और कठिनाइयों के उपरान्त भी मेरा मन श्री प्रभुजी के चरण कमलों से विरत नही हुआ। शायद इसके दो कारण रहे, प्रथम– पूज्यपाद गुरुदेव जी का अपार स्नेह और दूसरा– कि मैंने श्री प्रभुजी को कभी संत, महात्मा, योगी न मानकर भगवान (भगवान का रूप नहीं) ही माना। घोर असफलता जनित क्षोभ और क्रोध में उनसे ही लड़ाई लड़ी। खीझ भी उतारी।

पिता से माता सौ गुना करती सुत सों प्यार।
माता से हरि सौ गुना, हरि से गुरु सौ बार।।

काफी समय तक यही लगा कि यह दोहा किसी चापलूस गुरु भक्त ने लिखा है परंतु ज्यों–ज्यों समय बीतता गया दोहे की सत्यता अनुभव होने लगी। बात 1970 की है (यों तो अनेकानेक कृपायें है) एम.ए. पास किये एक वर्ष बीत रहा था। विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान था फिर भी हाईस्कूल से लेकर स्नातकोत्तर किसी कॉलेज में नौकरी नही लगी। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। अतः मेरी नौकरी न लगने का कारण मेरी कम अच्छी प्रतिशत को लेकर घर में क्लेश चलता था। उसी के चलते बहस करने पर एक बार खूब पिटाई, माँ द्वारा की गई।

शाम को श्री प्रभुजी की आरती के समय (मैं अकेले आरती करता था) मैं खूब रोया और श्री प्रभुजी को धमकी दी कि यदि 1970 की गुरुपूर्णिमा तक नौकरी न लगी तो उस दिन, दोस्त से पैसे उधार लेकर, खूब अच्छी तरह पूजन करूँगा और फिर 4 मील दूर जाकर जमुना जी में तुम्हे प्रवाहित कर आऊँगा। बैठे है देखते नहीं कि कितने कष्ट मे हूँ आदि–आदि।

बात आई गई हो गई। रोज आरती होती रही। अचानक एक दिन रामनगर जिला नैनीताल से इंटरव्यू लैटर आया। प्रार्थना की और चल दिया। गाड़ी टूंडला से मुरादाबाद, फिर

बस ठाकुरद्वारा होते हुए रामनगर। अगले दिन 11 बजे से इंटरव्यू में उपस्थित होना था। अलीगढ़ पर ट्रेन रोककर घोषणा हो रही थी– गंगास्नान वाले यात्री रेल की छत से उतर जाये तभी गाड़ी चलेगी। खैर– रोते झींकते 12 बजे दोपहर मुरादाबाद लगे। पता चला कि वहाँ से बस द्वारा 4 घंटे का रास्ता है। 'स्वासा सो आशा' अब चलना ही था। ठाकुरद्वारा पर बस आधा घंटे रुकनी थी। सो शेव कराई, सिर दर्द हो रहा था सो गोली खाई। परन्तु पूरे रास्ते तनाव और श्री प्रभुजी से प्रार्थना। एक पुर्ची पर नाम भी लिख लिया। ठीक 4 बजे बस कॉलेज गेट के सामने रुकी। दौड़कर आफिस के बाहर खड़े चपरासी को पुर्ची दी, कहा कि बता दे। उसने बताया कि इंटरव्यू तो समाप्त हो चुका है और प्रबन्ध समिति के सदस्य चाय पी रहे हैं। चपरासी से फिर कहा कि पुर्ची तो दे दे। उसने लौटकर बड़े बाबू के कमरे में बैठने को कहा। प्रबंधक ने चाय नाश्ता भिजवा दिया। सोचा भले आदमी होंगे, बाद में बुलाकर देर के कारण खेद व्यक्त कर देंगे। परंतु प्रार्थना नहीं छूटी।

अंदर से बुलावा आया। घोर आश्चर्य कि प्रवेश करते ही समिति के अध्यक्ष ने कहा कि आपका ही इंतजार था। सो धन्यवाद दिया। अगला प्रश्न इससे भी अधिक चौंकाने वाला था। प्रश्न था–बताइये कब जॉइन करेंगे। टाइप किये हुए नियुक्ति पत्र पर नाम लिख कर तत्काल दे दिया गया। प्रसन्नता तो अपार, श्री प्रभुजी के प्रति आभार परन्तु दिन कौन सा था उन करुणा सागर ने छिपा रखा था। मुझे रामनगर आते समय बस कंडक्टर ने बता दिया था कि अंतिम बस 5 बजे शाम छूटती है सो मेरे पूछने पर कॉलेज प्रबंध समिति के अध्यक्ष ने, मुझे बताने के बजाय, चपरासी से कहा कि उनके द्वारा चलवाई जाने वाली बस में आगे की एक सीट मेरे लिए रोक कर इंतजार हो।

प्रसन्न मन से बस में बैठा। देखा अधिकांश स्त्री पुरुष चन्दन लगाये, सूखे–गीले वस्त्र पहिने, बस में बैठ रहे हैं और अब बारी थी उस दिन के खुलासे की जिस दिन श्री प्रभुजी का पूजन कर यमुना में प्रवाहित करने को कहा था। अर्थात् गुरुपूर्णिमा 1970। आँखों से अश्रु प्रवाह होने लगा उन अकारण कृपालु लीलाधारी की लीला स्मरण करके कि कब तक उस पवित्र दिवस को छिपाये रखा। शायद ब्रह्मचारी गोपालानंद जी के पूर्व गुरु जैसे को ...की देता तो बदले में श्राप मिलते। पुनः ब्रह्मचारी गोपालानंद के ही, श्री प्रभु जी के प्रति, शब्द याद आते हैं–''प्रभो आप आप ही हैं।'' और याद आती हैं पंक्तियाँ दस करोड़ गुना प्यार करने वाली कि मुझ जैसे व्यक्ति को अपने चरण कमलों से कभी दूर न करने वाले श्री प्रभुजी और उनके प्रतिरूप श्री गुरुदेव की। अब एक इच्छा इस अकिंचन की और है–

तमन्ना जिसकी रखते हैं, वही अंजाम हो जाये।
सवाई में प्रभूजी अहले दिल की शाम हो जाये।।

यहाँ सवाई स्थान विशेष नहीं, बल्कि कृपा क्षेत्र का प्रतीक है। अब इन्हीं चरण कमलों में रहें।

भजन

मोती राम गर्ग, अलुपुर

प्रभुजी प्रभुजी मेरी कर दो नैया पार।
बीच भंवर में डूब रही, इसको दो उबार।।

1. गज ग्राह की हुई लड़ाई, गज गया था हार।
गज ने तुम्हें याद किया, ग्राह को दिया मार।।
प्रभुजी प्रभुजी..........

2. सुग्रीव को बाली ने, घर से दिया निकाल।
राम रूप में आकर तुमने, बाली को दिया मार।।
प्रभुजी प्रभुजी...........

3. द्रोपदी के भरी सभा में, दु:शासन ने चीर उतारे।
कृष्णरूप में आये प्रभु जी, उसकी लाज बचाये।।
प्रभुजी प्रभुजी..........

4. प्रभु रामलाल बनकर, योग का प्रचार किया।
नेति धोती जीवन तत्व से, रोगों का उपचार किया।।
प्रभुजी प्रभुजी..........

5. बरहन में तुम वैद्य बनकर, बाबू राम के घर आये।
चूहों की मींगन दे देकर, कइयों के रोग मिटाये।।
प्रभुजी प्रभुजी.........

6. मोती राम आश लगाए, बैठा तेरी शरण में।
दया करके आ जाना, ढूँढू किधर किधर में।।
प्रभुजी प्रभुजी..........

गीता का कर्मयोग

श्री बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय

कर्मयोग का विवेचन प्रधानतया दो ही प्रश्नों के उत्तर में परिसमाप्त हो जाता है– (1) किस प्रकार का कर्म करना चाहिए और (2) उसे करने की यथार्थ विधि क्या है? प्रस्तुत निबन्ध में हमें यही विचार करना है कि श्रीमद्भगवतगीता इन प्रश्नों का उत्तर क्या देती है।

पहले प्रश्न के उत्तर में भगवद्गीता कहती है–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।

'इसलिए कौन–सा कर्म करना चाहिए और कौन–सा नहीं करना चाहिए, इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र ही प्रमाण है। इस विषय में शास्त्र की आज्ञा जानकर तुम्हें उसी के अनुसार कर्म करने चाहिए।'

हम लोग इस जन्म से पहले असंख्य बार इस संसार में जन्म ले चुके हैं। उन प्राक्तन जन्मों में हमें कभी मनुष्ययोनि, कभी तिर्यग्योनि और कभी कीट–पतंग आदि की योनि प्राप्त हुई होगी। उन–उन जन्मों में हम जो कुछ कर्म कर आये हैं उन्हीं के संस्कार इस जन्म में वासनारूप से हमारे चित्त में मौजूद हैं और बहुधा हमें अनुचित कर्म करने को प्रेरित करते हैं। अध्यात्ममार्ग में आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि हम सारी इच्छाओं और आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हो जायें। इच्छा और आसक्ति से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है शास्त्रविहित कर्म करना। क्योंकि शास्त्रोक्त विधिनिषेध का पालन करने के लिए मन को काबू में रखने और उन अनेक कर्मों से बचने की आवश्यकता है जिनकी तरफ हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ऐसा करने से हमारी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का हमारे चरित्र पर जो प्रभाव पड़ता है वह कमजोर पड़ जाता है और अन्ततोगत्वा हमारी इच्छाएँ और आसक्तियाँ भी कमजोर हो जाती हैं। इस प्रकार हमने अपने प्राक्तन जन्मों में जो निषिद्ध आचरण किये हैं उनके प्रभाव से हम मुक्त हो सकते हैं। इस विषय पर ईशोपनिषद् का वाक्य है–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

'जो मनुष्य विद्या और अविद्या दोनों को जानता है वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को लाँघ कर विद्या की सहायता से शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर सकता है।'

'विद्या' का अर्थ है ज्ञान, और 'अविद्या' शब्द यहाँ कर्म का वाचक है। ब्रह्मविद्या का

उपदेश ग्रहण करने के साथ–ही–साथ शास्त्रोक्त कर्म करते रहना भी आवश्यक है। ऊपर के मन्त्र में यही कहा गया है कि कर्म के द्वारा मनुष्य मृत्युसंसार सागर के पार जा सकता है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त कर्म करने से मनुष्य उन अनुचित एवं अन्याय प्रवृत्तियों से छूट सकता है जो जन्म से ही उसके साथ है और जिनके कारण हमें बार–बार जन्मना और मरना पड़ता है। इस प्रकार अन्तःकरण के शुद्ध होने पर ही ब्रह्मविद्या की यथार्थ प्राप्ति होकर हमें ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है–(उपर्युक्त व्याख्या श्रीमद्रामानुजाचार्य की है। श्रीशंकर भगवत्पाद ने इस मन्त्र की दूसरे ढंग से व्याख्या की है)।

वर्तमान जीवन में हम जो कुछ पुण्य–पाप करते हैं उनमें से अधिकांश का अच्छा–बुरा फल हमें स्वर्ग अथवा नरक के रूप में प्राप्त होता है। परन्तु स्वर्ग अथवा नरक में नियत काल तक रह लेने के पश्चात् भी हमारे पुरातन कर्मों का थोड़ा–सा अंश शेष रह जाता है जिसका फलभोग हम आगे चलकर करते हैं। यह शेष कर्म ही हमारे इस लोक में जन्म का हेतु होता है और उसी के अनुसार हम अच्छी–बुरी परिस्थिति में जन्म लेते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र में यही बात कही गई है–

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा।।

'जिनके अच्छे आचरण होते हैं वे अच्छी योनि में अर्थात्, ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्ययोनि में जन्म लेते हैं और जिनके मन्द आचरण होते हैं वे कुत्ते, सूअर, चाण्डाल आदि नीच योनियों में उत्पन्न होते हैं।'

जिनका ब्राह्मण के घर में जन्म हुआ है उन्होंने पूर्व–जन्म में एक प्रकार के कर्म किये थे और जिन्होंने क्षत्रियकुल में जन्म लिया है उन्होंने दूसरे प्रकार के कर्म किये थे। इसी लिए शास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के कर्मों का विधान किया गया है। यही वर्णाश्रम–धर्म का मूल सिद्धान्त है। ब्राह्मणोचित कर्म करने वाला ब्राह्मण पुण्य का भागी होता है। परन्तु वही कर्म यदि क्षत्रिय करे और क्षत्रियोचित कर्म न करे तो उसे पाप लगता है। इसीलिए जब अर्जुन ने कहा– 'मैं इस युद्ध में अपने आत्मीयों को मारने की अपेक्षा भिक्षाटन करके जीवन–निर्वाह करना उत्तम समझता हूँ', तो भगवान् ने उससे कहा, 'भाई! धर्मयुद्ध में अपने स्वजन–बान्धवों को मारने पर भी तुम्हें पुण्य ही होगा, क्योंकि तुम क्षत्रिय हो और शास्त्र के अनुसार धर्मयुद्ध में भाग लेना क्षत्रिय का धर्म है। भिक्षावृत्ति को शास्त्रों ने ब्राह्मण का कर्म बतलाया है और भिक्षावृत्ति करने वाला ब्राह्मण पुण्य का भागी होता है। परन्तु यदि कोई क्षत्रिय युद्धक्षेत्र से भागकर भिक्षाचर्या करने लगे तो वह पाप का भागी होगा।'

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।

'हे अर्जुन, तुम्हें अपने सहज कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए, चाहे उस कर्म में कितने ही दोष क्यों न हों।' अर्थात् 'तुम्हारा क्षत्रिय कुल में जन्म हुआ है, अतः हिंसारूप दोष से युक्त होने पर भी तुम्हें युद्ध से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए।'

भिन्न-भिन्न परिस्थिति में जो-जो कर्म करने चाहिए उन सबका सविस्तार उल्लेख गीता में नहीं है। इसका कारण यह है कि गीता कोई स्मृतिग्रन्थ नहीं। स्मृतिग्रन्थों में इसका सविस्तार वर्णन मिलता है कि अमुक व्यक्ति को अमुक परिस्थिति में क्या करना चाहिए। गीता ने तो केवल कर्तव्य निश्चित करने का गुर बता दिया है, वह यह है कि मनुष्य वही कर्म करे जो उसके लिए शास्त्र में विहित है। चारों वर्णों के कर्तव्य क्या हैं यह भी गीता ने अलग-अलग संक्षेप में बता दिया है। यहाँ यह बात बतला देने की है कि गीता जन्म से जाति को मानती है। यदि ऐसी बात न होती तो श्रीकृष्ण अर्जुन को यह कभी नहीं कहते कि 'तुम क्षत्रिय हो, अतः युद्ध करना तुम्हारा 'स्वधर्म' है। यदि तुम युद्ध क्षेत्र से भागकर भैक्ष्यचर्या करने लगोगे तो पाप के भागी होओगे।' यदि हम जन्म से जाति नहीं मानते तो फिर जो कोई भी युद्ध करेगा वही क्षत्रिय कहलायेगा और जो पूजा-अर्चना, यज्ञ-योगादि करेगा और भिक्षाट्‌न से अपना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करेगा वही ब्राह्मण कहलायेगा, ऐसी परिस्थिति में स्वधर्मत्याग का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा, क्योंकि जो काम वह करना चाहेगा वही उसका स्वधर्म होगा। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

अर्थात् गुण और कर्म के विभाग के अनुसार मैंने चारों वर्णों की सृष्टि की।

कुछ लोग इस श्लोकार्द्ध से यह आशय निकालते हैं कि वर्तमान जन्म के गुण और कर्म के अनुसार ही किसी मनुष्य की जाति मानी जानी चाहिए। परंतु यह अर्थ विचार की कसौटी पर नहीं ठहरता। क्योंकि यदि प्राक्तन कर्म के अनुसार जाति नहीं मानी जाये तो यह कहना नहीं बन सकता कि चातुर्वर्ण्य के लिए शास्त्र में बताये हुए कर्मों को करने से मनुष्य पुण्य अथवा पाप का भागी होता है। और न यही कहा जा सकता है कि 'अपने सहज (जन्म के साथ लगे हुए) कर्म को मत छोड़ो, ऐसा करने से तुम्हें पाप लगेगा।' इससे यह बात सिद्ध होती है कि ऊपर के श्लोकार्द्ध में 'गुण' और 'कर्म' शब्द से प्राक्तन गुण और प्राक्तन कर्म का ही ग्रहण होता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर हमारे प्राक्तन जन्म के गुण और कर्म के अनुसार ही यह निश्चय करते हैं कि हमारा जन्म किस योनि में हो। जन्म यदृच्छा से नहीं होता। उपर्युक्त श्लोकार्द्ध की इसी ढंग से व्याख्या करने से गीता के मूल सिद्धान्त के साथ तथा उपनिषद् के उपर्युक्त वाक्य के साथ इसकी संगति बैठ सकती है।

भगवान् हमें शास्त्रविधानोक्त कर्म करने की आज्ञा देते हैं। परंतु शास्त्रों में किन-किन

शास्त्रों की गणना है? इसका उत्तर यह है कि वेद, पुराण, स्मृति और इतिहास (रामायण और महाभारत) ही शास्त्रपदवाच्य है। वेद हिन्दू-धर्म के मूल स्त्रोत हैं। परन्तु वेद की अनेक शाखाएँ अब लुप्त हो गई है। इन लुप्त शाखाओं का तात्पर्य पुराणों, स्मृतियों और इतिहासों से जाना जा सकता है, जो वेदवेत्ता ऋषियों द्वारा प्रणीत है और वेद का ही अनुसरण करते हैं। बिना अतीन्द्रिय ज्ञान के यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक जाति में जन्म पूर्वजन्म के कौन-से कर्म का फल है। और न यही कहा जा सकता है कि इस जीवन में किस प्रकार का कर्म करने से पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के दुष्परिणाम से हम बच सकते हैं। यदि कोई शास्त्रोक्त कर्म हमें अनुचित मालूम होता हो अथवा यदि कोई शास्त्रवर्जित कर्म हमें अच्छा मालूम होता हो तो हमें ऐसा मानना चाहिए कि हमारा यह विचार भ्रममूलक है और हमारी दोषयुक्त बुद्धि का परिणाम है। हमारा मन राग-द्वेष से भरा है। इसीलिए अच्छी बातें हमें कभी-कभी बुरी मालूम होती हैं और बुरी बातें हमें अच्छी मालूम होने लगती हैं। सत् में असद्बुद्धि और असत् में सद्बुद्धि इसी से होती है। ईश्वर की आज्ञा कभी अनुचित नहीं हो सकती। जिन ऋषियों ने शास्त्रों में ईश्वरीय आदेशों को संग्रथित किया वे रागद्वेष से सर्वथा मुक्त थे और उनसे उन आज्ञाओं के समझने में भूल नहीं हो सकती थी।

अब तक हमने इस बात को समझने का यत्न किया कि कर्तव्य कर्म के सम्बन्ध में गीता का क्या आदेश है। उन कर्मों को करने की विधि के सम्बन्ध में भी गीता के उपदेश बहुमूल्य ही नहीं, अपितु संसार के धार्मिक साहित्य में अनूठे एवं अद्वितीय हैं। पहली बात तो इस सम्बन्ध में यह कही गई है कि कर्तव्य कर्म भी हमें उन कर्मों में आसक्ति छोड़कर करने चाहिए। अर्थात् हमें अपने कर्तव्य का पालन इसीलिए करना चाहिए कि वह हमारा कर्तव्य है, न कि इसलिए कि हमें वह प्रिय है। कर्म में आसक्ति भी हानिकारक हो सकती है, क्योंकि यदि कोई हमारे उस कर्तव्यपालन में बाधा पहुँचावेगा तो हम उससे रुष्ट हो जायेंगे। दूसरी बात यह है कि हमें फल की कामना को अवश्य त्याग देना चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन इसीलिए करो कि वह तुम्हारा कर्तव्य है। कर्म का फल ईश्वर के हाथ में है। यदि ईश्वर चाहेंगे तो तुम्हारा उद्योग सफल हो जायेगा, अन्यथा तुम्हारी सारी चेष्टाएँ विफल हो जायेंगी। परन्तु तुम्हें सफलता मिले या न मिले, तुम्हारे मनमें कभी क्षोभ नहीं होना चाहिए। कर्मयोगी अन्तःकरण की शुद्धि के उद्देश्य से ही कर्म करता है। यदि शास्त्रोक्त कर्म ठीक तरह से किये जायें तो मन कामनाशून्य हो जायेगा, संसारासक्ति नष्ट हो जायेगी। और ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरी कामना की वस्तु ही नहीं रह जायेगी। दूसरों के हित की चेष्टा करते समय भी हमें यह सोचना चाहिए कि 'मेरी शक्ति तो सीमित है, मेरी बुद्धि कमजोर है, दूसरों का दुःख दूर करने की मुझमें सामर्थ्य ही कहाँ है? दूसरों के कष्ट को यथार्थ रीति से निवारण करना भी मैं क्या जानूँ? परन्तु भगवान की शक्ति असीम है। उनकी दया का कोई थाह नहीं है। मुझे अभिमान एवं मूर्खतावश यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि जिस दुःख को भगवान दूर नहीं कर सकते उसको मैं दूर कर दूँगा। मेरी

समझ से जिस काम के करने से किसी दूसरे का कष्ट दूर हो सकता है उसे करने की भी इसीलिए चेष्टा करता हूँ कि मेरे लिए भगवान की यही आज्ञा है। यदि मैं इस प्रकार की चेष्टा करूंगा तो मेरी इच्छाएँ कम हो जायेंगी और मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। गीता यह भी कहती है कि कर्म करते हुए हमें आत्मा के सच्चे स्वरूप को अर्थात इस बात को कि वह हमारे शरीर, मन और इन्द्रियों से भिन्न है कदापि नहीं भूलना चाहिए। सारे कर्म शरीर, मन और इन्द्रियों के द्वारा होते हैं। परन्तु अज्ञानी लोग यह समझते हैं कि आत्मा ही सब कुछ करता है। इस अज्ञान का कारण अहंकार है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह इस अहंकार का त्याग करे। यद्यपि कर्म में किसी प्रकार की आसक्ति नहीं होनी चाहिए, न फल की ही इच्छा होनी चाहिए और न कर्तापन का अभिमान होना चाहिए, तथापि कर्म की सिद्धि के लिए जैसा उत्साह और जितनी चेष्टा आवश्यक है उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि आदर्श कर्मयोगी को धृति और उत्साह का पुतला होना चाहिए। इसीलिए वह बहुधा दूसरों की अपेक्षा अपने कार्यों में अधिक सफल होता है। साधारणतया जो मनुष्य अधिक उत्साही होता है उसकी कर्म में आसक्ति तथा कर्मफल में स्पृहा भी देखी जाती है। परन्तु आसक्ति और कामना उसके कार्य की सिद्धि में सहायक होने के बदले उलटी बाधक होती है। कर्मयोगी अपनी चेष्टा में किसी प्रकार की न्यूनता न आने देकर भी सब प्रकार की आसक्ति और कामना का त्याग कर देता है। परंतु जो कुछ वह छोड़ता है उससे उसके कृतकार्य होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

जो लोग कर्ममात्र को स्वरूप से छोड़ने के पक्ष में हैं उनका यह कहना है कि प्रत्येक कर्म बन्धन का कारण है, क्योंकि प्रत्येक कर्म का फल हमें भोगना ही पड़ेगा। इसीलिए वे कर्ममात्र को छोड़ने के पक्षपाती हैं। परन्तु गीता कहती है कि कर्म का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है क्योंकि सर्वथा निश्चेष्ट हो जाने से जीना भी असम्भव है। इसके अतिरिक्त कर्म के त्यागमात्र से कोई कर्मफल से मुक्त नहीं हो सकता। यदि कोई भोजन करना छोड़ दे परन्तु उसका मन भोजन के चिन्तन में लगा रहे तो यह चिन्तन ही एक कर्म हो जायेगा जिसका फल उसे अवश्य मिलेगा। हमें कर्म का फल क्यों भोगना पड़ता है इसका गूढ़ रहस्य गीता बतलाती है। कर्म के फलभोग में कारण है हमारी कर्म में आसक्ति, फल की कामना और यह भ्रममूलक बुद्धि कि अमुक कर्म हम करते हैं। यदि हम इन तीनों बातों को छोड़ दें तो हमें कर्म का फल नहीं भोगना पड़ेगा। शास्त्रोक्त कर्म इस पद्धति से करने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है और इस प्रकार से किये हुए कर्मों का फल हमें नहीं भोगना पड़ता। बल्कि इस प्रकार के कर्म हमें पिछले कर्मों के बन्धन से भी मुक्त कर देते हैं।

इस प्रकार हमें यह मालूम हो जाता है कि इस लेख के प्रारम्भ में दिये हुए दोनों प्रश्नों के उत्तर में गीता क्या कहती है।

कौन–से कर्म करने चाहिए, इसका उत्तर तो गीता यह देती है कि हमें शास्त्रोक्त कर्म

करने चाहिए। दूसरा प्रश्न था–कर्म करने की यथार्थ विधि क्या है? इसका उत्तर गीता इस प्रकार देती है– 'आसक्ति और फल की इच्छा को त्यागकर कर्म करो। कर्म करते हुए इस बात को याद रखो कि शरीर अथवा इन्द्रियों से ही सारे कर्म होते हैं, आत्मा अक्रिय है। किंतु ऐसा होने पर भी कर्म करने में धृति और उत्साह पूरा होना चाहिए।'

योग क्या है?

योग शब्द 'युज् समाधौ' धातु से घञ् प्रत्यय होकर बना है, अतएव इसका अर्थ संयोग न होकर समाधि ही हुआ है। समाधि नाम चित्तवृत्तिनिरोध की क्रियाशैली का है, उस क्रियाशैली को पूज्यपाद महर्षियों ने चार भागों में विभक्त किया है– मन्त्रयोग, हठयोग, ,लयोग और राजयोग।

परिदृश्यमान प्रपंच का कोई भी भाग नाम रूप से बचा हुआ नहीं है। जीव नाम रूप में ही फँसकर बद्ध होता है, जिस भूमि पर गिरता है, उसी भूमि को पकड़ कर मनुष्य उठ सकता है, आकाश को नहीं। इस नियम के अनुसार जीव को नाम रूप के अवलम्बन से ही मुक्तिपथ की ओर अग्रसर होना होगा। अतः दिव्य नामरूप के अवलम्बन से चित्तवृत्ति निरोध की जितनी क्रियाएँ हैं, शास्त्र में उन्हें मन्त्रयोग नाम से कहा गया है।

स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखने वाली षट्कर्मादि योग–क्रियाओं के अभ्यास द्वारा स्थूल शरीर पर आधिपत्य स्थापित करते हुए सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्तवृत्तिनिरोध की जितनी क्रियाशैलियाँ हैं, उनका नाम हठयोग है।

समष्टि–व्यष्टि के सिद्धान्तानुसार जीवशरीररूपी पिण्ड, समष्टिसृष्टिरूपी ब्रह्माण्ड दोनों एक हैं। अतः ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं का अस्तित्व उसी के समान पिण्ड में अवश्य है। पिण्ड में ब्रह्माण्डव्यापिनी प्रकृतिशक्ति का केन्द्र मूलाधारपद्म में स्थित सार्धत्रिवलयाकारा–साढ़े तीन चक्र लगाये हुए सर्पवत् कुण्डलाकृति कुण्डलिनी है। ब्रह्माण्डव्यापी पुरुष का केन्द्र सहस्त्रदलकमल है, निद्रित कुलकुण्डलिनी को गुरुपदिष्ट योगक्रियाओं से प्रबुद्ध करते हुए कुलकुण्डलिनीस्थ प्रकृतिशक्ति को सुषुम्नानाड़ीगुम्फित षट्चक्रों के भेदन द्वारा ले जाकर सहस्त्रदलकमलविहारी परमात्मा में लय करने की जो क्रियाशैली है और तदनुयायी जितने साधन हैं, उनको लय योग कहते हैं।

मन की क्रिया मनुष्य के बन्धन का कारण है। बुद्धि की क्रिया मनुष्य को मुक्त कराने में सहायक होती है। बुद्धि की क्रिया विचार है, अतः उसके द्वारा चित्तवृत्तिनिरोध की जो क्रियाशैली है, उसका नाम राजयोग है। इसका अधिकार सबसे बढ़कर है।

आय–व्यय का विवरण वर्ष– 2008–09

आय			व्यय		
	पिछला रोकड़ बाकी				
1.	बैंक में प्रारंभ शेष	53528	1.	प्रिंटिंग कागज खर्च	102745
2.	वार्षिक शुल्क प्राप्त नकद	115739	2.	टिकिट कार्यालय खर्च	9820
3.	बैंक से प्राप्त राशि	13201	3.	बैंक में अंतिम शेष जमा	158442
4.	बैंक मे ब्याज के जमा	82897		योग–	271007
5.	सहयोग राशि (सूची निम्न है)	5642			
	योग–	271007			

सहयोग राशि दाताओं की सूची

1.	अवनीश कु. गुप्ता, भोपाल	500
2.	बनवारी लाल बघेल, फिरोजाबाद	1250
3.	रतनचन्द मलिक, बलाकलाल	500
4.	अशोक गुप्ता, मेरठ	3100
5.	जे. पी. गुप्ता, नागपुर	500
6.	कल्पना गुप्ता, लखनऊ	25000
7.	राजेश श्रीवास्तव, आगरा	1000
8.	सत्यम/दीपक कौशिक, मनीर हरि	1200
9.	प्रेम प्रकाश श्रीवास्तव, रुद्रपुर	500
10.	प्रेम प्रकाश कलल, पानीपत	500
11.	राजेश शर्मा, पानीपत	1100
12.	जगदीश गुप्ता, कालपी	1100
13.	रजनीश वाचस्पति, गोरखपुर	2100
14.	उमाशंकर गुप्ता, झाँसी	500
15.	प्रदीप अग्निहोत्री, भिण्ड	500
16.	कल्पना गुप्ता, लखनऊ	21000
17.	अनिल कुमार (कुमार) कोठवा, मिर्जापुर	1000
18.	फकीरचन्द ...	500
19.	विजय गौतम ...	100
20.	जय प्रकाश ...	395
21.	ओम प्रकाश ..., सिरसा	1000
22.	ओम प्रकाश, सिरसा मंडल	7100
23.	ओम प्रकाश ..., धनबाद	500
24.	रवीन्द्र गोयल, धनबाद	1100
	योग–	82897

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का

यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग–1	रु. 100.00
2. योग सिद्धान्त, भाग–2	रु. 100.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00
4. भोग–रोग–योग	रु. 10.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00
8. योगिराज मुल्खराज जी	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित कथायें	रु. 20.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00
11. आठ योगी	रु. 10.00
12. योग क्यों – कैसे	रु. 7.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00
15. सुधा संगीत	रु. 5.00
16. योग क्या?	रु. 5.00
17. यम–नियम	रु. 7.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00
21. योग रामायण	रु. 20.00
22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
27. दीदी के भजन	रु. 5.00
28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
30. अध्यात्म भजनावली–1	रु. 5.00
31. अध्यात्म भजनावली–2	रु. 5.00
32. अध्यात्म भजनावली–3	रु. 5.00
33. अध्यात्म भजनावली–4	रु. 5.00
34. अध्याम भजनावली–5	रु. 5.00
35. **Life Force**	रु. 10.00
36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
40. सद्गुरु कृपालीला, भाग–1	रु. 35.00
41. सद्गुरु कृपालीला, भाग–2	रु. 40.00
42. सद्गुरु कृपालीला, भाग–3	रु. 40.00
43. चरणोदक	रु. 10.00
44. सिद्धयोग (मासिक) वार्षिक शुल्क	रु. 130.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आकर अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। – व्यवस्थापक

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

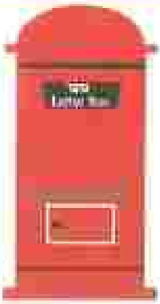

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आप्शन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 300.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर एलीमाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/-प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/– प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ——————

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

APRIL 2009

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566.

सम्पादक : आचार्य न. (डॉ.) दासलाल शर्मा